॥ ओ३म् ॥

क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है?

लेखक—
श्री वैद्य रामगोपालजी शास्त्री

॥ ओ३म् ॥

क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है?

लेखक—
श्री वैद्य रामगोपालजी शास्त्री

प्रकाशक:—

रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़-१३१०२१
(सोनीपत-हरयाणा)

प्राप्ति-स्थान—

रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़-१३१०२१
(सोनीपत-हरयाणा)

प्रथम संस्करण—८००
सं० २०४२
सन् १९८५
मूल्य ...
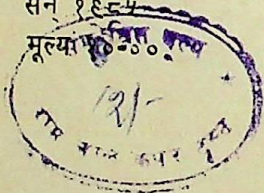
मुद्रक: —

शान्तिस्वरूप कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस
बहालगढ़ (सोनीपत)

वेद-गोष्ठी के प्रवर्तक
अनेक वैदिक ग्रन्थों के सम्पादक और लेखक
पीयूषपाणि उदररोगविशेषज्ञ

स्व० श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री

प्रकाशकीय

इस पुस्तक के लेखन का उपक्रम कैसे हुआ इसका वर्णन स्व० श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री ने अपने प्राक्कथन में लिखा है। अतः उसका पुनर्निर्देश पिष्टपेषणमात्र होगा।

यह पुस्तक आषाढ़ सं० २०२६ (जनवरी १९७०) में हंसराज कालेज (संस्कृत विभाग) नई दिल्ली की ओर से प्रकाशित की गई थी। इस पुस्तक की उपयोगिता और आवश्यकता को ध्यान में रख कर इसके पुनः प्रकाशन के लिये श्री स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती ने संस्कृत विभाग हंसराज कालेज नई दिल्ली से स्वीकृति प्राप्त करने के लिये विशेष प्रयत्न किया और अन्त में इस के प्रकाशन के लिये श्री पं० जयपाल जी विद्यालंकार, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, हंसराज कालेज, नई दिल्ली ने ८-१०-८४ के पत्र द्वारा सहर्ष अनुमति प्रदान की। इसके लिये हम श्री स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग, हंसराज कालेज देहली, दोनों के अत्यन्त आभारी हैं।

इस पुस्तक के प्रस्तुत संस्करण के लिये श्री पूज्य स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती ने जो 'उपोद्घात' लिख कर दिया है, उसके लिये भी हम श्री माननीय स्वामी जी महाराज के आभारी हैं।

—युधिष्ठिर मीमांसक

HANS RAJ COLLEGE
(UNIVERSITY OF DELHI)

Ref. No. 818 Delhi-7 the 8-10-1984

श्री विद्यानन्द सरस्वती
अध्यक्ष—रामगोपाल शास्त्री समिति, दिल्ली।
डी १४/१६, माडल टाऊन, दिल्ली।

सेवा में,

श्री विद्यानन्द जी सरस्वती,

सादर प्रणाम।

सविनय निवेदन है कि आप का दिनांक ११-९-८४ का पत्र मिला। **"क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है"?** वैद्य रामगोपाल जी की इस पुस्तक के विषय में अधिक जानकारी हमारे पास नहीं है। हमारे कालेज के संस्कृत विभाग ने कब इसका प्रकाशन किया, इस सम्बन्ध में मुझे कोई जानकारी नहीं मिल सकी। कालेज का यह प्रकाशन हो या न हो, यदि कालेज की स्वीकृति से आप का काम चलता हो तो हमें इस में क्या आपत्ति हो सकती है। **आप इस पुस्तक का प्रकाशन सहर्ष कीजिए, कालेज की ओर से आप को पूर्ण अधिकार दिए जाते हैं।** स्पष्टता के लिए मैं यह भी कहना चाहूंगा कि इस प्रकाशन के विषय में यदि कालेज से असम्बद्ध किसी अन्य व्यक्ति को कोई आपत्ति होगी तो कालेज उस में कतई जिम्मेदार नहीं होगा। इस प्रकाशन का व्यय आदि भी कालेज से सम्बद्ध नहीं होगा। हमारी इतनी अपेक्षा आपसे अवश्य होगी कि प्रकाशित पुस्तक की कुछ प्रतियां आप कालेज पुस्तकालय को दे दें।

सधन्यवाद

भवदीय

जयपाल विद्यालंकार
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
कृते प्रिंसिपल, हंसराज कालेज

विषयसूची

विषय	पृष्ठ
प्राक्कथन	१
भूमिका	४
१—मावन जाति के दो वर्ग	१
२—पुस्तक का उद्देश्य	३
३—आर्य शब्द की व्युत्पत्ति	५
४—दास तथा दस्यु शब्दों की व्युत्पत्तियां	११
५—आर्य दास दस्यु शब्दों का वेद में मनुष्यों तथा जड़ पदार्थों के लिये प्रयोग	१५
६—ऋग्वेद में आर्य पद का प्रयोग	२०
७—ऋग्वेद में दास	३०
८—भृत्य अर्थ में दास पद का प्रयोग	३९
९—ऋग्वेद में दस्युपद	४१
१०—आदिवादियों का स्वरूप और धम तथा उसकी समीक्षा	५२
११—आदिवासियों के विशिष्ट व्यक्ति और उनकी समीक्षा	६५
१२—आर्यों, दासों तथा दस्युओं का युद्ध	७२
१३—आदिवासियों की बस्तियों का विध्वंसन	८१

विषय **पृष्ठ**

१४—आर्यों का आर्यों के साथ युद्ध और उसकी समीक्षा ८६
१५—उपसंहार ६४

परिशिष्ट—

१—निघण्टु के अतिरिक्त ऋग्वेद में आये कुछ असुरों (मेघों) के नाम १००
२—निघण्टौ (३०) त्रिशन्मेघनामति १०४
३—इन्द्र का बैल और भैंसों का भक्षण तथा उसकी समीक्षा १०६
४—इन्द्र का सोमपान ११६

संशोधन-पत्र

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
भूमिका-६	8	Seriptures	Scriptures
8	2	floursһing	flourishing
,,	5	remaius	remains
,,	,,	sincirely	sincerely
,,	7	Christionity	Christianity
	9	idsnlater	Idolater
,,	9	Casts	Castes
,,	10	effected	affected
,,	11	praselytise	proselytise
,,	12	religions	religious
,,	13	heartly	heartily
,,	15	T. B. Macailly	T. B. Macaullay
11	23	Mueller	Muller
12	12	Poof.	Prof.
12	19	oarly	early
14	24	grammer	grammar

INTRODUCTION

17	6	Peof.	Prof.
20	2	propogate	propagate
20	11	floursһing	flourishing
20	18	Caste	Castes

पृष्ठ	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
20	20	praselytise	proselytise
20	22	heartly	heartily
24	23	Oriential	Oriental
६३	२३	वज्र से द्वारा	वज्र द्वारा
७९	१७	कर्मरश्व	कर्मपश्य
८८	२१	शत्र	शत्रु
११०	१६	आत हैं	आते हैं
११९	२०	शाखम् अर्थात नीचे की ओर शाखावाला लिखा है।	शाखम् लिखा है।

उपोद्घात

भारत की एकता और अखण्डता तथा उसकी अनेकविध समस्याओं के समाधान में सबसे बड़ी बाधा कुछ लोगों के इस देश के मूल निवासी होने और कुछ के विदेश से आकर यहां के मूल (आदि) निवासियों को पराजित कर इस देश पर अधिकार कर लेने की मान्यता है। छोटी से छोटी पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालयों तक में यही सिखाया जाता है कि इस देश के मूल निवासी कोल, द्रविड़, भील, संथाल आदि हैं। कालान्तर में ईरान आदि देशों से आकर कुछ लोगों (आर्यों) ने इस देश पर आक्रमण किया। यहां के आदि-वासियों में से कुछ को उन्होंने मार डाला, कुछ को दास बना लिया और कुछ डर के मारे दक्षिण की ओर भाग कर वहां जा बसे। इस प्रकार इस देश में रहने वालों को दो भिन्न जातियों - आर्य और दस्यु —के रूप में बांट कर देश के दो टुकड़े कर दिये गये। उत्तर और दक्षिण आदि के विवाद के मूल में यही मान्यता काम कर रही है।

इस मान्यता के आधार पर कहा जाता है कि यदि दो सौ वर्ष पहले आने वाले अंगरेज और चार सौ वर्ष पहले आने वाले मुगल विदेशी हैं तो तीन हजार वर्ष पूर्व आने वाले आर्य विदेशी क्यों नहीं हैं ? देश उस दिन स्वतन्त्र हुआ माना जायेगा जिस दिन अंगरेजों की तरह आक्रान्ता के रूप में आने वाले आर्य भी इस देश से निकल जायेंगे ४ सितम्बर १९७७ को संसद् में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सदस्य सर फ्रैंक एन्थोनी ने मांग की थी—"Sanskrit should be deleted from the 8th schedule of the constitution because it is a foreign language brought to this country by

foreign invaders, the Aryans"—Indian Express, 5.9.77 अर्थात् —संविधान के आठवें परिशिष्ट में परिगणित भारतीय भाषाओं की सूची में से संस्कृत को निकाल देना चाहिये, क्योंकि यह विदेशी आक्रान्ता आर्यों के द्वारा लाई जाने के कारण विदेशी भाषा है। २३ फरवरी १९७८ को द्रमुक के प्रतिनिधि लक्ष्मणन् ने राज्य-सभा में मांग की कि भारतीय उपगृह का नाम 'आर्य भट्ट' नहीं रक्खा जाना जाना चाहिये था, क्योंकि यह विदेशी नाम है। कुछ वर्ष हुए तामिलनाडु के सलेम नामक नगर में राम के आर्य होने के कारण ही उनकी मूर्ति के गले में जूतों का हार डालकर झाड़ओं से मारते हुए बाजारों में जलूस निकाला गया।

मुसलमानों की ओर से अब एक और बात कही जा रही है — मुसलमान बनने वाले लोगों में अधिकांश छोटी जातियों —अनुसूचित जातियों और जन जातियों— में से हैं। क्योंकि अनुसूचित जातियों और जन जातियों के लोग भारत के मूलनिवासी हैं, इसलिये हिन्दू से मुसलमान बने लोग ही इस देश के मालिक हैं, अन्य सब विदेशी हैं। इस सन्दर्भ में Muslim India के २७ मार्च १९८५ के अंक में प्रकाशित यह वक्तव्य द्रष्टव्य है—"This land belongs to those who are its original inhabitants. It is they who built the Harappa and Mohenjo—daro, the world's most ancient civilisations. Most of India's Muslims and christians are converts from these sons of the soil. Hence they are the rightful owners of this land".

ऋषि क्रान्तदर्शी होता है। सबसे पहले महर्षि दयानन्द ने इस भ्रान्त धारणा के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने घोषणा की— "किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग

ईरान से आये और यहां के जंगलियों को लड़कर जय पाके, निकाल के इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता हैं।"

यही बात इतिहासविद् म्यूर ने कहा है—

"I must, however, begin with candid admission that, so far as I know, none of the Sanskrit books, not even the most ancient, contains any distinct reference or allusion to the foreign origin of the Aryans. There is no evidence or indication in the Rigveda of the words Dasa, Dasyu, Asura etc. having been used for non-Aryans or original inhabitants of India"—Muir: Original Sanskrit Texts, Vol. II

अर्थात्—"यह निश्चित है कि किसी भी संस्कृत ग्रन्थ में, चाहे वह कितना ही पुराना क्यों न हो, आर्यों के विदेशमूलक होने का उल्लेख नहीं मिलता है। ऋग्वेद में जिन दास, दस्यु एवं असुर जैसे नामों का उल्लेख है ये अनार्यमूलक अर्थात् आदिम जातियों के लिये प्रयुक्त किये गये हों—इस प्रकार का कोई प्रमाण या संकेत उपलब्ध नहीं है।"

विश्वविख्यात एलफिन्सटन के कथन से भी ऋषि दयानन्द की मान्यता की पुष्टि होती है। उसने लिखा है—

"Neither the code of Manu, nor in the Vedas, nor in any book which is older than the code of Manu is there any allusion to the Aryan prior residence in any country outside India."

Elphinston : History of India, Vol I

अर्थात्—"न मनुस्मृति में, न वेदों में और न मनुस्मृति से पुराने किसी अन्य ग्रन्थ में आर्यों के (भारत में आने से पूर्व) भारत से बाहर किसी देश में रहने का उल्लेख है।"

यह ठीक है कि कतिपय भारतीय विद्वानों ने भी इस मिथ्या कल्पना को प्रश्रय दिया है। लोकमान्य तिलक के अनुसार आर्यों का मूल निवास उत्तरी ध्रुव था। परन्तु जब उमेशचन्द विद्यारत्न इस विषय में उनसे वार्त्तालाप करने पूना गये तो तिलक महोदय ने स्पष्ट कह दिया—"आमि मूलवेद अध्ययन करि नाई। आमि साहब अनुवाद पाठ करिया छे"—हमने मूलवेद नहीं पढ़ा, हमने तो साहब (पाश्चात्य विद्वानों) का किया हुआ अनुवाद पढ़ा, है—मानवेर आदि जन्मभूमि पृष्ठ १२४।

उत्तरी ध्रुव विषयक अपनी मान्यता के सन्दर्भ में तिलक महोदय ने लिखा—"It is clear that soma juice was extracted and purified at night in the Arctic"—अर्थात्—"उत्तरी ध्रुव में रात्रि के समय सोमरस निकाला जाता था।" इसका प्रत्याख्यान करते हुए नारायण भवानी पावगी ने अपने ग्रन्थ 'आर्या-वर्त्तातील आर्यांची जन्मभूमि' में लिखा है—"किन्तु उत्तरी ध्रुव में तो सोमलता होती ही नहीं, वह तो हिमालय के एक भाग मुंजवान पर्वत पर होती है।'

भारत के ही एक अन्य विद्वान् श्री कन्हैयालाल मुन्शी ने भारतीय आर्यों के सम्बन्ध में बहुत कुछ अनर्गल लिखा और अपने कथन को ऋग्वेद पर आधारित बताया। जब हमने पत्र लिखकर ऋग्वेद में तथाकथित उन बातों का अता-पता पूछा तो उत्तर देते हुए उन्होंने अपने पत्र दिनांक २ फर्वरी १९५० में लिखा—

"My attempt has been to create an atmosphere

which I find in the Vedas as translated by Western scholars and as given in Dr. Keith's Vedic Index."

अर्थात् "मैंने आर्यों के सम्बन्ध मैं जो कुछ लिखा है उसका आधार पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किया गया वेदों का अनुवाद और डाक्टर कीथ का 'वैदिक इण्डेक्स' है।"

वस्तुत: द्रविड़ों के भारत के मूल निवासी होने और आर्यों के ईरान से आकर यहां बस जाने की कल्पना का आधार भौगोलिक संकेत की प्रतीति कराने वाले कतिपय शब्द हैं। इस अनर्थ की जड़ में वैदिक व्याकरण, निरुक्त आदि के निर्देशों की अवहेलना करके वैदिक शब्दों को यौगिक के स्थान रूढ़ मान कर किया हुआ दूषित वेदार्थ है।

इस विषय में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के ३१ अक्तूबर १९७७ के अंक में प्रकाशित निम्न समाचार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

"There is no conclusive evidence of Aryan migration into India from outside, according to Indian historians, linguists and archaeologists who participated in the international seminar in Dushambe, the capital of Soviet Republic of Tajikistan. Dr. N. R. Banerjee, Director of the National Museum and a member of the Indian delegation said that Indian scholars made out this point of the seminar and the papers presented by them were very much appreciated. The seminar was held under the aegies of UNESCO to discuss the problem of ettenic movement during the second millenium B.C. Ninety delegates from the Soviet Union, West Germany, Iran, Pakistan and India attended.

The seven member Indian delegation was led by Prof. B. B. Lal, Director of the Indian Institute of Advanced studies. It was pointed out by Indian scholars that the archaeological material associated with Aryans in different regions and periods in India did not show any links with the archaeological survival of the Aryans in Afg anistan, Iran and central Asia."

भाव यह है कि भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करने वाले इतिहासविदों भाषाविशेषज्ञों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओं के सात सदस्यीय प्रतिनिधि मण्डल ने अन्तर्राष्ट्रिय गोष्ठी में आर्यों के ईरान आदि से आकर भारत में बस जाने विषयक मत का एकमत होकर प्रतिवाद किया। तत्पश्चात् हम केन्द्रीय सरकार के दो शिक्षा मन्त्रियों से मिलकर आग्रह कर चुके हैं कि जब स्वयं सरकार द्वारा नियुक्त अधिकृत विद्वान् आर्यों के बाहर से आने की भ्रान्त धारणा का प्रत्याख्यान कर चुके हैं। तब शिक्षा मन्त्रालय को चाहिये कि इस विषय का निर्देश इतिहास की पुस्तकों, सरकारी निर्देशों, संविधान आदि से आदिवासी जैसे शब्दों को निकलवा दे। आश्चर्य इस बात का है कि जहां यह पढ़ाया जाता है कि आर्य लोग ईरान से आकर भारत में बस गये वहां ईरान में यह पढ़ाया जाता है कि भारत से जाकर आर्य लोग ईरान में बस गये—

"चन्द हजार साल पेश अज जमाना माजीरा बजुर्गी अज निजाद आर्या अज कोह हाय कफ काज गुजिश्तः, बर सर जमीने के इमरोज कस्मने मास्त कदम निहादन्द। ब चू आबो हवाय ई सर जमीरा मुआफिक तब अ खुद माफ्तन्द दरी जा मस्कने गुजीदन्द व आरां बनाम खेश ईरान खियादन्द।"

(देखो जुगराफिया पंज किश्ते बनाम तदरीस दरसाल पजुम इब्तदाई सफा ७८, कालम १, मतब ग्र दरसनहि तेहरान सन् हिजरी १३०६, सीन ग्रव्वल व चहारम ग्रज तर्क विजारत मुग्रारिफ व शरशुद:)

ग्रर्थात्—कुछ हजार साल पहले ग्रार्य लोग हिमालय पर्वत से उतर कर यहां ग्राये ग्रौर यहां का जलवायु ग्रनुकूल पाकर ईरान में बस गये।

ईरान के बादशाह सदा ग्रपने साथ ग्रार्यमेहर की उपाधि लगाते ग्राये। फारसी में सूर्य को मेहर कहते हैं। ईरान के लोग ग्रपने ग्राप-को सूर्यवंशी ग्रार्य मानते रहे हैं। धार्मिक मतान्धता के कारण ग्रब यह स्थिति बदलती जा रही है।

दुर्भाग्यवश, प्रकारान्तर से--प्राचीन भारत के इतिहास को निमित्त बना कर—वेद ग्रौर वैदिक कालीन ग्रार्यों का जो चित्र वर्त्तमान ग्रौर भावी पीढ़ियों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है उसे पढ़ सुन कर किसी के भी हृदय में ग्रपने ग्रतीत के प्रति गौरव की भावना नहीं रह सकती। इस सन्दर्भ में दिल्ली में "Indian History and Cul-ure Society' को १५ फर्वरी १८७६ को हुए ग्रधिवेशन में दिया बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर डा० लल्लनजी गोपाल का यह वक्तव्य ग्रत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

"Before the communist party formed its government in China, it carried on for 20 years a systematic campaign of producing books interpreting every aspect of Chinese life in Marxist terms. The aim behind it was to prepare the minds of the people to accept the correctness of various phases of man's

history as described by Marx. A similar attempt is being made by historians here ·· — — Dr. D. N. Jha who is joint Secretary of Indian History Congress and his colleagues in Delhi University that did not hide their marxist leanings and said that they would live to interpret historical events and facts in Marxist terms."

—Indian Express, dated 14-15 Feb. 1979.

भाव यह है कि भारत के प्राचीन इतिहास के योजनाबद्ध रूप में विकृत किया जा रहा है। अब उसे साम्यवादी रंग दिया जा रहा है। इस प्रकार कालान्तर में भारत का अपना स्वरूप जाता रहेगा और हम अपने स्वत्व से सदा के लिये हाथ धो बैठेंगे।

प्रस्तुत ग्रन्थ में मनीषिप्रवर वैदिक विद्वान् वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री ने उपर्युक्त विषय का शास्त्र सम्मत तथा तर्क प्रतिष्ठित विवेचन किया है। उन्होंने तद्विषयक मूल ग्रन्थों के स्वतन्त्र अध्ययन द्वारा एक एक शब्द का एक्स-रे करके उसकी वास्तविकता का दर्शन किया है। और उसी के आधार पर अपने मत का प्रतिपादन किया है। एकता और अखण्डता के रूप में प्रवर्त्तित युगधर्म की दृष्टि से इस मत की स्थापना का कि इस देश में दो नहीं एक ही जाति रहती है, अधिक से अधिक प्रचार अपेक्षित है।

विद्यानन्द सरस्वती

अध्यक्ष

१० मई १९८५ वैद्य रामगोपाल शास्त्री स्मारक समिति दिल्ली

प्राक्कथन

सन् १९६९ के फरवरी मास से दिल्ली के कई कालेजों में वेद सम्बन्धी गोष्ठियां और व्याख्यान होने आरम्भ हो गए। कहीं-कहीं तो विश्वविद्यालय के उच्चकोटि के भारतीय विद्वानों ने अपने व्याख्यानों में यह कहना आरम्भ कर दिया, कि आर्य लोग भारत में बाहर से आए हैं और भारत के आदिवासी द्रविड़, कोल, भील, संथाल आदि थे; जिन्हें आर्यों ने पराजित करके भारत पर आधिपत्य जमा लिया। इन व्याख्यानों को सुनने के लिए दयानन्द ब्राह्म-महाविद्यालय लाहौर के मेरे पुराने शिष्य डा० रामस्वरूप एम० ए० प्राध्यापक हंसराज कालेज, दिल्ली तथा डा० वेदमित्र एम० ए० बी० टी० रिटायर्ड प्रिंसिपल गवर्नमैंट स्कूल दिल्ली प्रायः जाया करते थे। वे उन व्याख्यानों को सुनकर जब आते थे तो यही कहते थे कि इनका उत्तर देना चाहिए इससे कालेज के छात्रों में वेद के प्रति अश्रद्धा बढ़ती चली जा रही है। उन्हीं दिनों मेरे पौत्र राजन्य छठी कक्षा के विद्यार्थी की "प्राचीन-भारत" नाम की पुस्तक मेरे हाथ में लग गई। उस पुस्तक में "वैदिक-युग का जीवन" विषय पर आर्य और दस्यु के सम्बन्ध में नीचे लिखा अंश मेरी दृष्टि में पड़ा—

"जब पहले-पहल आर्यों ने भारत में पदार्पण किया तो उन्हें भूमि के लिए उन लोगों से युद्ध करना पड़ा जो यहां पहले से रह रहे थे। आर्य इन लोगों को दस्यु या दास कहते थे। आर्य गौर वर्ण के थे और दस्यु काले रङ्ग और चपटी

नाक वाले थे। दस्यु देवताओं की पूजा नहीं करते थे जिनकी आर्य पूजा करते थे। यह जो भाषा बोलते थे उसे आर्य नहीं समझते थे। आर्य संस्कृत बोलते थे। आर्यों ने दस्युओं को युद्ध में पराजित किया, परन्तु उनके साथ दयालुता का व्यवहार नहीं किया और अनेक दस्युओं को दास बना लिया। दस्युओं को आर्यों की सेवा करनी पड़ती थी। उन्हें कठिन और नीच काम भी करना होता था।"

जब मैंने पुस्तक के ये वाक्य पढ़े तो मेरे हृदय में बड़ी चोट लगी। एक ओर तो कोमल हृदय के बच्चों में और दूसरी ओर कालेज के युवा छात्रों में यह विषैला विचार भरा जा रहा है कि आर्य और दस्यु भिन्न-भिन्न लोग थे। अपनी ७८ वर्ष की आयु में भी मैंने इस विषय पर अपनी लेखनी उठानी आरम्भ कर दी।

मेरे पास पुस्तक आदि सामग्री नहीं थी। इसके लिए डी० ए० वी० कालेज मैनेजिंग कमेटी के प्रधान श्री गोवर्धन लाल दत्तजी ने बड़ी उदारता से पन्नालाल गिरधारलाल डी० ए० वी० कालेज के पुस्तकालय से मुझे वेद-सम्बन्धी सब पुस्तकें भिजवा दी और साथ-ही पं० सोमकीर्ति वेदालंकार को लिखने के लिए मेरे पास भेज दिया। उनकी सहायता का मैं बड़ा आभारी हूं।

पुस्तक के लिखने में पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट वालों ने मुझे बहुत ही सहयोग दिया। कई प्रश्न इतने जटिल थे कि वे उनकी सहायता के बिना लिखे ही नहीं जा सकते थे। इसके लिए मैं उनका भी अत्यन्त अनुगृहीत हूं।

इस ग्रन्थ के लिखने में पं० विद्याभास्कर जी शास्त्री, पुरोहित आर्यसमाज करोलबाग, दिल्ली ने कई मास निरन्तर लिखने के कार्य में मुझे सहयोग दिया। मैं उनका भी आभार प्रदर्शन करता हूं तथा श्री दरबारीलाल जी सुपरिटेण्डेण्ट डी० ए० वी० कालेज मैनेजिंग कमेटी दिल्ली, जिन्होंने हर प्रकार से इस प्रकाशन में मुझे सहयोग दिया है, इनका भी धन्यवाद करता हूं।

हंसराज कालेज, दिल्ली के संस्कृत विभाग ने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में सहयोग दिया है। अतः प्रिंसिपल शान्तिनारायण जी का भी मैं हृदय से आभारी हूं।

टिप्पणी—इस पुस्तक के लिखने में मैंने वैदिक माईथालोजी और वैदिक इण्डैक्स इन दो पुस्तकों का आधार लिया है। जहां-जहां भी पुस्तक में मैंने उद्धरण दिए हैं वे वैदिक माईथालोजी के हिन्दी अनुवाद **वैदिक-देवशास्त्र** तथा वैदिक इण्डैक्स के हिन्दी अनुवाद **वैदिक-कोष** से उद्धृत किए हैं। अतः पाठक सब स्थानों में पुस्तक के अंग्रेजी नाम होने पर भी हिन्दी के अनुवाद के उद्धरण समझें।

—**वैद्य रामगोपाल शास्त्री**, दिल्ली

भूमिका

ऋग्वेद में आर्य, दास तथा दस्यु शब्दों को देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने यह मिथ्या कल्पना की कि वैदिक काल में आर्य तथा दास भिन्न-भिन्न जातियां थीं। प्रो० ए० ए० मैक्डानल एवं प्रो० कीथ ने अपनी रचना "वैदिक-इण्डैक्स" के दो भागों में वेदों में आए 'वर्ण' तथा 'जाति' आदि पदों के सम्बन्ध में १९१२ ई० में लन्दन से यह ग्रन्थ प्रकाशित किया था। उन्होंने लिखा कि आर्य और दासों में परस्पर युद्ध होते थे; आर्य लोग उन आदिवासी दासों के पुरों (नगरों) को विध्वंस कर देते थे। उनका कहना है कि वेद-में आदिवासियों और उनकी प्रजा का भी वर्णन है। आर्य-दास युद्धों में जब कुछ आदिवासी मर जाते थे तो शेष जीवित आदिवासियों को पकड़कर अपना दास बना लेते थे। उन आदिवासी द्रविड़, कोल, भील, संथाल आदि का वर्ण कृष्ण होता था। उनमें कई "अनास" अर्थात् बैठी हुई नाक वाले होते थे। उनकी बोली कठोर होती थी। आर्य और दासों में प्रमुख रूप से धर्म का अन्तर था। दास लोग आर्य देवताओं से घृणा करते थे, वे यज्ञों के विरोधी थे। दासों का मुख्य धर्म लिङ्ग-पूजा था। इसलिए वेद में उन्हें "**शिश्नदेव**" कहा गया है। आर्य लोग दासों की स्त्रियों को अपनी दासी अर्थात् नौकरानी बना लेते थे। इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने लिखा कि जहां दास तथा दस्यु लोगों का

आर्यों के साथ युद्ध होता था वहां आर्यों का आर्यों के साथ भी युद्ध हुआ करता था। इस प्रकार की अनेक निराधार कल्पनाएं उन्होंने अपने ग्रन्थों में की हैं।

वेद के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने ऐसा क्यों किया ? इसका मुख्य कारण था कि अंग्रेजों को भारत पर राज्य करना था और उनकी मुख्य नीति यह थी कि आर्यों के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद पर ही कुठाराघात किया जाए, जिससे यह सिद्ध किया जाए कि वेद में लिखे हुए "दास" तथा "दस्यु" भारत के आदिवासी ही हैं। वे इस देश के मूल निवासी थे जिन्हें आर्य लोगों ने बाहर से आकर भारत-भूमि से खदेड़ा और उन्हें युद्धों में परास्त करके भारत को सदा के लिए अपने अधीन कर लिया।

फूट के इस बीजारोपण से भारत की द्रविड़, कोल, भील आदि जातियों में सदा के लिए सवर्ण हिन्दुओं के विरुद्ध घृणा उत्पन्न हो गई, जिसका कुपरिणाम हम इस समय भी देख रहे हैं।

प्रथम-आक्रमण

वैदिक-साहित्य को भ्रष्ट करने के लिए १५ अगस्त १८११ को कर्नल बोडन नामक एक व्यक्ति ने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय को अपने स्वीकार-पत्र (Will) के अनुसार पुष्कल धन राशि दी और उस धन के लिए शर्त यह थी कि उससे अंग्रेजों को आर्य-साहित्य का ज्ञान कराया जाय, जिससे वे इस साहित्य को जानकर हिन्दुओं को ईसाई बना सकें। विश्वविद्यालय में यह काम मोनियर विलियम को सौंपा गया।

बोडन ट्रस्ट का उद्देश्य—

Chair of oriental studies and the Oxford University under Boden Trust, whose chief object was as follows as given by Monier William in the Introduction to his well known Sanskrit English Dictionary.

"That the special object of his (Boden's) – munificient bequest was to promote the translation of the scriptures into English, so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to christian religion." –

मोनियर विलियम ने बोडन ट्रस्ट के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

बोडन साहब के इस ट्रस्ट को महान् दान करने का यह प्रसिद्ध लक्ष्य था कि भारत की संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद करके देशवासियों को इस योग्य बनाया जाय कि वे **संस्कृत ग्रन्थों को जानकर भारतीय जातियों का धर्म परिवर्तन करके ईसाई बनाएं।**

सन् १८११ से लेकर ओक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में यह काम चलता रहा। संस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी तैयार हो गई और बहुत से अंग्रेज छात्रों को आर्यों के साहित्य की शिक्षा दी जाने लगी। शिक्षक वर्ग अध्यापन काल में ही छात्रों को संस्कृत-साहित्य के साथ-साथ ऐसी शिक्षा भी देते गये कि जिससे वे भारत में जाकर हिन्दुओं के मनों को कलुषित कर सके।

मैकाले का भारत आगमन

मैकाले जो एक पादरी परिवार में उत्पन्न हुआ था और जो पीछे लार्ड मैकाले बन गया, वह सन् १८३४ में 'लीगल एडवाइजर टु दि कौंसिल आफ इण्डिया' बन कर भारत में आया और यहां पर उसे ऐजूकेशन बोर्ड का प्रधान बनाया गया। वह यहां चार वर्ष रहा और इन चार वर्षों में भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में घूमकर उसने अनुभव किया कि जिस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी राज्य को चला रही है। उससे हम हिन्दुओं को ईसाई नहीं बना सकते, इसलिये उसने पहला कार्य यह किया कि भारतवर्ष में जहां-जहां संस्कृत पढ़ाई जाती थी, उसे अनुदान देना बन्द करवाया और कलकत्ता में स्थानीय कालेज को मिलने वाला अनुदान (Grant) भी बन्द कर दिया गया।

जब वह १८३९ में. इङ्गलैण्ड पहुंचा तो उसने कहा कि संस्कृत मैंने इसलिये बन्द की कि यदि संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन इसी प्रकार जारी रहा तो भारत में हम अंग्रेजी सभ्यता को नहीं फैला सकेंगे।

संस्कृत-भाषा हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों का मूल है, यदि हम इस मूल भित्ति को समाप्त कर देंगे और इसके स्थान में शिक्षा अपने हाथ में लेकर अंग्रेजी का शिक्षण कर देंगे तो बिना किसी प्रयत्न के बङ्गाल के हिन्दु विशेषकर उच्च जातियों के हिन्दु स्वयमेव ईसाई बन जायेंगे।

मैकाले ने जो पत्र अपने पिता को लिखा उसी से उसकी मानसिक भावना जानी जा सकती है—

"Calcutta October 12, 1836—My dear Father our english school are flourshing wonderfully the effect of this education on the Hindus is prodigious. No Hindu who has received an English education, ever remaius sincirely attached to his religion. Some continuc to profess it as a matter of policy, and some embrace Christionity. It is my belief that, if our plans of education are followed up, there will not be a single idsnlater among the respectable Casts in Bengal thirty years hence. And this will be effected with out any efforts to praselytise, with out the smallest interference with religions liberty by natural operations of Knowledge and reflection. I heartly rejoice in the prospect—Ever yours most effectionately.

—T. B. Macaillay.

मैकाले ने कलकत्ता से १२ अक्तूबर १८३६ को अपने पिता को इस प्रकार पत्र लिखा—

मेरे प्यारे पिता ! हमारे अंग्रेजी स्कूल बड़ी शीघ्रता से उन्नति कर रहे हैं। इस अंग्रेजी शिक्षा का हिन्दुओं पर बड़ा लाभकारी प्रभाव हुआ है, कोई भी हिन्दु जिसने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की है अपने धर्म के प्रति श्रद्धावान् नहीं रहेगा। कईयों ने तो इस शिक्षा से ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है यदि यह शिक्षा प्रचलित रही तो अब से ३० वर्ष के भीतर-भीतर कोई भी उच्च-जाति का हिन्दु बङ्गाल में मूर्तिपूजक नहीं रहेगा। इस प्रकार बिना किसी यत्न के और इनके धर्म

में बाधा डाले बिना ये स्वयमेव ईसाईयत की ओर प्रवृत्त हो जायेंगे। इस प्रकार की उन्नति से मैं बहुत प्रसन्न हूं।

आपका प्यारा
टी० बी० मैकाले

मकाले के इस पत्र से सिद्ध हो जाता है कि वह संस्कृत का पठन-पाठन सर्वथा बन्द करके अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार इसलिये करना चाहता था कि भारत की उच्च-जातियों के हिन्दु अपने धर्म को छोड़कर ईसाई धर्म में प्रवेश करें। वास्तव में मैकाले का नाम टी० बी० मैकाले था—परन्तु भारत के लिए वह टी० बी० का रोग सिद्ध हुआ।

मैकाले से एफ़० मैक्समूलर की भेंट

मैकाले सन् १८३९ में जब इङ्गलैण्ड में आया तब वह एक संस्कृत के विद्वान् की खोज में था, वह ऐसा विद्वान् चाहता था: जो वेद के सम्बन्ध में योग्यता रखता हो। एच० एच० विलसन और वारोन वुनसन के द्वारा मैकाले को पता लगा कि जर्मन देशोत्पन्न मैक्समूलर इस काम के योग्य है।

दिसम्बर १८५४ को मैक्समूलर और मैकाले की भेंट हुई। उस समय मैकाले ५५ वर्ष का अनुभवी तथा कुशल राजनीतिज्ञ बन चुका था और मैक्समूलर ३२ वर्ष का नवयुवक था। मैकाले और मैक्समूलर की कई घण्टे बात-चीत होती रही और मैकाले ने मैक्समूलर को कहा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी लाखों रुपये व्यय करने को उद्यत है यदि आप हिन्दुओं के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद का अनुवाद करें और इस ढंग से लिखें कि जिससे वैदिक-विचार-धारा को भ्रष्ट किया जाए। तुम

इस काम में अंग्रेजी सरकार को सहयोग दो और हिन्दुओं के हृदयों में वेद के लिये अश्रद्धा उत्पन्न करो, जिससे अंग्रेजी राज्य की नींव सुदृढ़ हो और हिन्दुओं को विना किसी यत्न के ईसाई बना सकें।

मैक्समूलर की नियुक्ति

मैकाले के सुझाव से जर्मन देशोत्पन्न इङ्गलैण्ड वासी प्रो० एफ० मैक्समूलर ने यह काम १८५५ में आरम्भ किया। मैक्समूलर ने आक्सफोड विश्वविद्यालय में वेदानुसंधान के काम में सन् १८५५ ई० लेकर १९०० ई० तक वेद के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा। भारतीय लोग यह समझते रहे कि मैक्समूलर ने वेदानुसन्धान करके वैदिक-साहित्य के लिए बड़ा उपकार किया है, परन्तु मैक्समूलर के हृदय में तो वेद को जड़ से नष्ट करने की भावना थी; उसका लक्ष्य था कि वैदिक विचारधारा तथा श्रद्धा को नष्ट करके भारत में ईसाई मत का बीजारोपण किया जाए। मैक्समूलर का लक्ष्य उनके निम्न पत्रों द्वारा सिद्ध होता है—

प्रथम पत्र—मैक्समूलर ने १८६६ में अपनी पत्नी को लिखा था—

"I hope I shall finish the work and I feel convinced though I shall not live to see it yet this addition of mine and the translation of the Veda will here after tell to great extent on the fate of India and on the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show them what the root

is. I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years.

अर्थात् मुझे आशा है कि मैं यह कार्य सम्पूर्ण करूंगा और मुझे पूर्ण विश्वास है, यद्यपि मैं उसे देखने को जीवित न रहूंगा, तथापि मेरा यह संस्करण वेद का आद्यन्त अनुवाद बहुत हद तक भारत के भाग्य पर और उस देश की लाखों आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालेगा। वेद इनके धर्म का मूल है और मुझे विश्वास है कि इनको यह दिखाना ही कि वह मूल क्या है—उस धर्म को नष्ट करने का एक मात्र उपाय है, जो गत ३ सहस्र वर्षों से उससे (वेद से) उत्पन्न हुआ है।

द्वितीय पत्र—यह पत्र १६ दि० १८६८ को उन्होंने तत्कालीन भारत के मन्त्री ड्यूक आफ आर्गायल को लिखा था—

The ancient religion of India is doomed, if christianity does not step in, whose fault will it be ?

भारत के प्राचीन धर्म का पतन हो गया है; यदि अब भी ईसाई धर्म नहीं प्रचलित होता है तो इसमें किसका दोष है ?

तृतीय पत्र—सन् १८९९ ई० में ब्रह्मसमाजी मिस्टर एन० के० मजुमदार को लिखा—

"You know for how many years. I have matehed your efforts to purify the popular religion of India and thereby to bring it near to the purity and perfection of

---

१. यह तथा अगले पत्र Life and Letters of Max Mueller से उद्धृत हैं।

other religions, particularly of christianity......Tell me some of your chief difficulties that prevent you and your countrymen From openly following christ.

अर्थात् तुम जानते हो मैंने तुम्हारे भारत के प्रिय धर्म को शुद्ध करने के प्रयत्न एवम् उसको अन्य धर्मों, विशेषकर ईसाई मत की पवित्रता और पूर्णता के समीप लाने के कार्य का अनेक वर्षों से अध्ययन किया है······तुम मुझे अपनी मुख्य परेशानियां बताओ जो तुम्हें तुम्हारे देशवासियों को स्पष्ट रूप से ईसाई बनने में बाधा डालती है।

चतुर्थ पत्र—प्रो० मैक्समूलर के एक मित्र ई० बी० पूसी ने उन्हें निम्नलिखित पत्र लिखा—

A friend of Poof. Max Mullar, Mr. E. B. Pussey writes to him thus:—

"Your work will form a new era in the efforts for conversion of India and Oxford will have reason to be thankful for that, by giving you a home, it will have facilitated a work of such primary and lasting importance for the conversion of India, and which by enabling us to compare that early false religion with the true illustrates the more than blessedness of what we enjoy."

"तुम्हारा कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के प्रयत्न में एक नवीन युग का निर्माण करेगा और आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय आपको यह स्थान देकर धन्यवाद का पात्र है। यह मुख्य और अत्यन्त महत्वपूर्ण (वेदभाष्यादि) कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के कार्य को सरल करेगा और······।

ब्राह्मणग्रन्थों और निरुक्त के प्रति मैक्समूलर के निन्दनीय वाक्य—

As the authors of the Brahmanas were blinded by theology, the authors of the still later Niruktas were deceived by etymological fictions, and both conspired to mislead by their authority later and more sensible commentators, such as Sayana.[1]

"अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने मतवाद से अंधे होकर पुस्तकें लिखी हैं और उनके पीछे निरुक्तकारों ने धातुवाद के झूठे आडम्बर में फंसाकर धोखा दिया है और इन दोनों प्रकार के लेखकों ने जनता को अपनी विद्वत्ता के कारण धोखा दिया है—और इनके पीछे के काल के सायण जैसे समझदार टीकाकारों को भ्रामक मार्ग पर डाल दिया है।"

ग्रिफ्थ का कार्य

आर० टी० एच० ग्रिफ्थ जो पहले बनारस कालेज का प्रिंसिपल था। उससे ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद सन् १८८६ में कराया गया, जिसमें वेद के विचारों को भ्रष्ट करने के लिये उसने अपने भाष्य में मनमानी की, उसका कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जा रहा है—

दासपत्नीरहिगोपाः। ऋक् १।३२।११॥

इस मन्त्र की टिप्पणी में दास पद पर टिप्पणी करते हुये लिखा है कि जङ्गली, डाकू भारत के अनार्यों में से कोई एक।

1. See preface Page XI of Griffith's English Translation of Rig Veda.

It means also, a savage, a barbarian, one of the non-Aryan inhabitants of India.

आभि: स्पृध: । ऋक् ६।२५।२ ॥

इस मन्त्र का अनुवाद करते हुये "दासों की जातियां" (Tribes of dasas) वाक्य उसने अपने आप जोड़ दिया है । मन्त्र में कहीं भी जाति का वर्णन नहीं है ।

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान् । ऋक् ६।३३।३ ॥

इस मन्त्र के अनुवाद में लिखा है कि (Both races) दो जातियें । मन्त्र में **उभयान् अमित्रान्** पाठ है । इसका अर्थ है— दो प्रकार के शत्रु । ग्रिफ्थ ने यहां पर अमित्र का अर्थ जाति किया है—

कृष्णा असेधदप सद्‌मनो जा: । ऋक् ६।४७ २१ ॥

इस मन्त्र की टिप्पणी पर ग्रिफ्थ ने (Dark aborigines) "काले वर्ण के मूल निवासी" यह लिखा है—हाला कि वेद में मूल आदिवासी अर्थात् मूल निवासीवाची कोई शब्द ही नहीं है जिसका उक्त अर्थ किया गया है । यहां हमने स्थालीपुलाक न्याय से उद्धरण दिये हैं कि इस प्रकार वेद को भ्रष्ट करने लिए इन लोगों ने यत्न किया है ।

मैक्समूलर के कुछ काल पीछे आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के अनुसन्धान विभाग का अध्यक्ष ए० ए० मैक्डानल को बनाया गया, उसने अपनी पद्धति को स्थायी रूप से प्रचलित रखने के लिये वेद के छात्रों के लिये—१. वैदिक रीडर फार स्टूडेंटस (Vedic Reader for students.) २. वैदिक ग्रामर (Vedic grammer), ३. वैदिक मैथालोजी (Vedic Mythology)

इन तीन ग्रन्थों को लिखा। सन् १९१२ में प्रो० कीथ के साथ मिलकर **वैदिक इण्डैक्स** नामक पुस्तक की रचना की। इस प्रकार अनेक ग्रन्थ वैदिक-विचारधारा को भ्रष्ट करने के लिये लाखों रुपये व्यय करके अंग्रेज सरकार ने लिखवाये।

आर्य लोग भारत के बाहर से आये हैं. भारत के मूल निवासी द्रविड़-कोल-भील-संथाल आदि ही यहां के आदिवासी थे, यह विचार सब से प्रथम **कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया** में दिया गया है।

नियम-बद्ध योजना—भारत में पाश्चात्य मान्यताओं का प्रसार करने के लिए बनारस और लाहौर में केन्द्र बनाए गए। बनारस में टी० एच० ग्रिफ्थ को बनारस कालिज का प्रिंसिपल बनाया गया। लाहौर में ए० सी० वुलनर को ओरिएन्टल कालिज का प्रिंसिपल बनाया गया। इन कालिजों में संस्कृत के एम० ए० उत्तीर्ण छात्रों (विशेषकर ब्राह्मण) को उच्चतम छात्र-वृत्ति देकर आक्सफोर्ड भेजा जाता था और जो छात्र उन गौरांग महाप्रभुओं से शिक्षा लेकर आते थे, उन्हें प्रिंसिपल अथवा उच्च कोटि का प्रोफेसर बनाया जाता था। लाहौर और बनारस में दोनों प्रिंसिपल वेद की कक्षाओं को स्वयं पढ़ाते थे और वहां वही पद्धति पाठ्यक्रम की रखी गई थी जो आक्सफोर्ड में थी।

इस प्रकार भारतीय छात्र, जिन्हें अपने ग्रन्थों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता था, विदेशी गुरुओं के पास जाकर उनके रङ्ग में ही रङ्ग जाते थे। इस तरह निरन्तर अनेक वर्षों तक यह योजना चलती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि वे भारतीय विद्वान् ही पाश्चात्य पद्धतियों के प्रचार और प्रसार

के साधन बन गए। इन भारतीयों ने भी वही राग अलापना आरम्भ किया जो अंग्रेज चाहते थे।

सन् १९४७ में अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये, परन्तु दुःख है कि अभी तक भी विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विद्यालयों में उसी विषाक्त पद्धति से शिक्षा दी जा रही है और वही विषाक्त विषय पढ़ाये जा रहे हैं जिनमें आर्य, दास-दस्यु को भिन्न जातियां कहा गया है और यही सिखाया जाता है कि भारत के मूल निवासी आर्य नहीं थे। इन्होंने बाहर से आकर आदिवासियों पर आक्रमण किए और इन्हें अपना दास बनाया। जब तक इस भ्रान्त मान्यता को समूल नष्ट नहीं किया जायेगा, तब तक वैदिक-संस्कृति और भारतीय चिन्तन खड़े नहीं हो सकते।

वास्तव में आर्य, दास तथा दस्यु कोई जातियां नहीं थीं और न ही इनके युद्धों का वर्णन वेद में है। वेद में ये शब्द गुणवाचक हैं, जातिवाचक नहीं। जो पाश्चात्य लेखक ऋग्वेद में आदिवासियों को चपटी नाक और काली त्वचा वाले बताते हैं, वह असत्य है। वे यह भी कहते हैं कि आर्य-लोग आदिवासियों की बस्तियों (पुरों) का विध्वंस करते थे और कभी-कभी आर्यों का आर्यों के साथ भी युद्ध हो जाया करता था। उनकी ये सारी बातें वेद और सत्यान्वेषण के विरुद्ध हैं। मेरा उनसे खुला प्रतिवेदन है कि वे सामने आएं और इस विषय में चर्चा करें, ताकि भारत से इस मान्यता को नष्ट किया जा सके।

आर्यसमाज मार्ग
करोल बाग
नई दिल्ली

लाहौर वास्तव्य
रामदास वधवात्मज
रामगोपाल शास्त्री वैद्य

Introduction

On finding the presence of words like **Arya, Dass** and **Dasyu** in the **Rig-Veda**, the Western scholars formed a wrong and baseless notion that these words denoted the existence of different races in the Vedic period. In 1912, Prof. Macdonell and Peof. Keith published in London a book entitled **'Vedic-Index'** in two volumes, in which they dealt with the words *'Varna'* and *'Jati'* (race), occuring in some Rig-Vedic texts. In that book, they wrote, that wars had been going on between the Aryas and Dasyus, in which the Aryans used to burn and destroy the towns and houses of the Dasyus *i. e.* the aboriginal tribes of India. Their theory was that in the Vedas, there is mention of these aboriginal tribes, that in these wars, the Aryans killed these natives and enslaved those who survived, that these aboriginal tribes such as Dravids, Kols, Bhils and Santhals etc. were dark coloured and had blunt noses, their speech was harsh and loud, that in religious ideas also, they differed from the Aryans, in that they opposed the rituals and ceremonies of the latter and they hated the gods and goddesses of

the Aryans and disliked their *'Yagyas'*, while they worshipped the **'Linga'** *(Shishna)* and it was for this reason that they had been called 'shishnadeva' in the Veda and their women were used as maid servants by the Aryans. These allegations were malicious and baseless. These scholars not only wrote these things, but also went further and wrote that these Aryans had come from outside while the **'Dasa'** and **'Dasyus'** were the real natives of India; and the facts that the Aryans not only fought the Dasyus but against themselves also. Such and like fanciful theories were given vent to by these Western scholars.

The origin of these theories can be traced to the Cambridge History of India which mentioned these theories for the first time. The main hypothesis for these theories were the motives of those early politicians and statesmen who were any how connected with the administration of India, and some missionary-minded Christian scholars, whose object was to spread Christianity in India. They invented such things to mislead and divide the people of India. This was the chief reason for inventing such ideas and spreading them. And with this purpose, they maligned and attacked Rig-Veda the Sacred Book of the Hindus and wanted to cause a cleavage among the people of India for tightening their hold on India. So they stated that Aryans were inva-

ders fr m outside, and that Dasas and Dasyus were the aboriginal tribes inhabiting in India; that they dislodged the native tribes from their habitations, conquered their territory and enslaved them. This propaganda of divide and rule was meant to create disunity in India and shaking their faith in the **Vedas.** The seed of causing disunity thus sown, has now grown into a tree, whose consequences we are now realising in the shape of the growing hatred between the caste Hindus and the Dravids and Bhills etc., (tribes and scheduled castes.)

Macaullay's Visit to India

1. Macaullay was born in a family of priests and he attained the rank of a lord. He came to 'India in 1834 as legal adviser to the council of India. Here, he became the chairman of the Education Board. He stayed here for four years. In these four years he visited the various parts of the country and found that in the way the East India Company is running the Government, it will not be possible to convert Hindus into Christians. As such, the first thing he did was to evolve a policy to stop the grants for institutions where Sanskrit was being taught, and took steps to stop the grant for the Local College in Calcutta.

2. When he reached England in 1839, he said that he had stopped the learning of Sanskrit because if Sanskrit

is learned and taught like this. we will not be able to propogate the philosophy of English culture.

3. Sanskrit is the key to Hindu religious literature. If we stop the learning of Sanskrit and take Education into our hands and teach English education, then without any effort on our part, the Hindus and especially the Bengal Hindus of high caste will voluntarily embrace christianity.

Letter of Macaullay

"Calcutta October 12, 1836—My dear Father our english schools are flourshing wonderfully the effect of this education on the Hindus is prodigious. No Hindu who has received an English Education, ever remains sincerely attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, and some embrace Christianity. It is my belief that, if our plans of education are followed up, there will not be a single Idolater among the respectable Caste in Bengal thirty years hence. And this will be affected without any efforts to praselytise, without the smallest interference with religious liberty by natural operations of Knowledge and reflection. I heartly rejoice in the prospect— Ever yours most affectionately.

T. B. Macaullay.

From this letter of Macaullay we can come to know that Macaullay stopped the learning of Sanskrit and introduced English education so that the high caste Hindus may discard their religion and follow Christianity. Actually Macaullay's name is T.B. Macaullay. It was really a tuberculosis for India.

Meeting between Macaullay and F. Max Muller

When he reached England in 1839, Macaullay was looking for a Sanskrit Scholar who had deep knowledge of the Vedas. Through H. H. Wilson and Baron Bunson, he came to know that the German Nationalist Max Muller is fit for the work he had.

Macaullay met Max Muller in December 1854. At that time Macaullay was 55 years old and was an experienced politician and Max Muller was a young man of 32. They had discussions for a long time and Macaullay told Max Muller that the East India Company is prepared to spend lakhs of rupees if he can translate the Rig Veda which is the base of Hindu culture and it should be written in such a way that it will destroy belief in Vedic religion. You co-operate with the British Government in this and create in the hearts of Hindus a disrespect towards Vedas. This will strengthen the foundations

of the British Empire and without any effort Hindus will voluntarily embrace Christianity.

To achieve this object, the English, first of all, utilised the services of German-born Mr. F. Max-Muller whom they appointed as head of the Vedic Research Department in Oxford University. During his service period from 1855 to 190, he carried on so-called Vedic researches in the name of Oriental Studies. He wrote many books. The ignorant people of India thought that Mr. Max Muller was doing a great service to India by his Vedic research. They did not then realise that his real object was that by attacking the very base of Indian thought and faith, he would make a ground for the spread of Christianity. That Mr. Max Muller had this object in view throughout, is clear from letters given below :

Letter No. 1—This letter Mr. Max Muller wrote to his wife in 1866, in which he said, "I hope I shall finish my work and I feel convinced, though I shall not live to see it, yet this edition of mine, and the translation of the Veda will hereafter, tell to a great extent, on the fate of India and on the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, is the only way of up-rooting all that has sprung from it, during the last 3000 years."

Letter No. 2—This is dated 16th December, 1868 which Mr. Max Muller wrote to the Duke of Argyll, the then Secretary of State for India, stating that the ancient religion of India is doomed, if Christianity does not step in, whose fault it will be ?

Letter No. 3 –In 1899, Mr. Max Muller wrote to Mr. N. K. Mazumdar, a Brahma-Samajist leader to the effect, "You know for how many years I have matched your efforts to purify the popular religion of India, and there by to bring it near to the purity and perfection of other religions, particularly, of Christianity......tell me some of your chief difficulties that prevent you and your countrymen from openly following Christ."

Letter No. 4–A friend of Mr. Max Mullar, Mr. E. B. Pussey writes to him thus:—

"Your work will form a new era in the efforts for the conversion of India, and Oxford will have reason to be thankful for that, by giving you a home it will have facilitated a work of such primary and lasting importance for the conversion of India, and which by enabling us to compare that early false religion with the true illustrates more than blessedness of what we enjoy."*

Apart from this, mark his attack deprecating the **Brahman Granthas** and the **Nirukta**, when he writes :

---

*From life and letters of Max Muller.

As the authors of the Brahmanas were blinded by theology, the authors of the still later Niruktas were deceived by etymological fictions, and both conspired to mislead, by their authority, later and more sensible commentators, such as Sayana.[1]

This unfounded insinuation against the ancient sages of India by a man of Max Muller type is nothing but spitting on the Moon.

In this connection the object with which the Boden Trust was established in 1811 is worth noting. We give below some extracts : "The chair of Oriental Studies and the Oxford University under Boden Trust whose chief object was as follows : (as given by Mr. Monier Williams in his introduction to his well-known book—Sanskrit-English Dictionary. We quote his remarks here.)

That the special object of his (Boden's) munificent bequest was to promote the translation of the Scriptures into English, so as to enable our countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to the Christian religion'.

Some time after Mr. Max Muller, Mr. A. A. Macdonell became in-charge of Oriental learning at the

---

1. See preface Page XI of Griffith's English Translation of Rig Veda.

Oxford University. He made great effort to continue this work and to perpetuate this chair. He wrote many books, chiefly, for the pupils of this class among which were (1) Vedic Reader for students, (2) Vedic Grammar, (3) Vedic Mythology. Later on in 1912 he collaborated with Mr. Keith in writing Vedic Index in two volumes. In this way, several books were got published to uproot the religion of the Vedas.

Sample of Griffith's translation

In his book Rig-Veda 6.33.3 and 1.25.2 Mr. Griffith, who translated Rig-Veda in English, uses the words tribes, races. This is his pure imagination and fiction. In Rig-Veda 1.51.8 footnote also, Dasyu is defined as a **lawless** man but Mr. Griffith translates it as hostile native. This is also not borne out by the text. In some verses, he uses the word aboriginals. This is also coined by him. These translations are the result of their preconceived ideas and preformed views.[1]

1. Sir John woodroffe's opinion about western scholars & those Indian Scholars who blindly follow them:—

Sir G. Woodroffe was judge of the High Court Bench. There he served competently for eighteen years, meanwhile officiating as Chief Justice in 1915. In 1923, he retired and went back to England. He had been a Fellow of the Calcutta University and was appointed Tagore Law Professor while in Calcutta. His words are worth gold :

"After all, what anyone else says should not effect the independence of our own judgment. Let others say what they will. We should ourselves determine matters which concern us. The Indian people will do so when they free themselves from that

To further implement that policy of propagating ideas of Western scholars in India, two centres of Oriental Studies were started in India; one at Banaras, and the second at Lahore.

Mr. Griffith became Principal of Banaras College, Banaras and Mr. Woolner started his work at Lahore as principal of Oriental College. Special scholarships were awarded to students (specially Brahmans), who were M. A. in Sanskrit, to enable them to proceed to Oxford for higher studies.

These Indian students, who returned after their completion of course, were appointed as lecturers in colleges. These Indians had been given ideas of western views and were used in spreading them in India. In these institutions the scheme of studies was the same as was at Oxford class of Vedic studies. The result was that the Indians who received training at these institutions and who had no knowledge of their own religion, were trained in theories propounded by Western scholars.

Thus this policy was worked out for many years and it resulted in producing a cadre of Indians imbued in Western ideas. In fact they became themselves

hypnotic magic, which makes them often blind reliance on the authority of foreigners, who even when claiming to be scholars, are not always free from bias, religious or racial"—(Tantra Sastra and Veda in 'Sakti and Sakta') From Hindu Vishwa Delhi, April 1970

instruments for propagating those ideas among their countrymen. They spoke in the tune in which their masters did.

Ultimately in 1947, though English Rule ended and Englishmen left India free, the carriculum and syllabus adopted by them in those institutions, was allowed to continue even after independence—and teaching in colleges and schools continued on the same lines and those very theories have been allowed to be taught.

This poisonous system of education, with the ideas above narrated, is allowed to continue in free India.

As long as this sort of education is not given the good-bye, and is not changed totally and unless sound Vedic ideas do not take their place, the religion, civilisation as well as Vedic culture are in great danger of being uprooted. Besides our youngmen cannot be national minded. A revival of Indian thought in its true perspective is essential at the present time.

The truth is that the words 'Arya', 'Dasa' or 'Dasyu' etc., found in the Rig-Veda, do not mean two tribes or races. There is no such classification of Aryas as foreigners and Dasyus as aboriginals as the Western scholars represent. These relate only to the character of persons. The emphasis laid on colour and blunt nose and the inference drawn from them is also wrong and baseless.

The words 'Arya' and Dasyu' distinguish good and noble souls from evil minded persons. In Rig-Veda 8.3.9 we have—both Arya and Dasyu belong to Indra (God). In R. 7.6 3, it is pointed out that the difference between Arya and Dasyu is due to their character and not due to two different tribes or races. Dasyus are atheist, rude, illiterate and are persons who perform no **'yagyas'** and have no faith in God.

In 8.70.11 of Rig-Veda we have, 'A Dasyu is riteless and godless, again in 10.22.8 R, a dasyu is senseless, inhuman and one who follows false laws.

Not fully knowing Vedic-Sanskrit and its technique of interpretation these western scholars have ventured to criticise the ancient Sages and to attribute motives to them as in the case of **Brahman Granthas** and the **'Nirukta'** referred to above. Does it lie in their mouth to presumptions. as to pass such remarks ? Their conduct is really deplorable and unbecoming in this respect, when the main hypothesis for the theories of Western scholars is clearly disclosed from the above quoted letters.

We challenge all those who hold a contrary view, to come forward and discuss with us.

Arya-samaj Road
Karol Bagh, Delhi-5
25th June. 1970.

Ram Gopal Shastri
Vaidya

मानव-जाति के दो वर्ग

आर्य=श्रेष्ठ और दस्यु=हिंसक

वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् । शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ऋक् १।५१।८ ॥

हे परमैश्वर्यवान् इन्द्र ! इस संसार में आर्य=श्रेष्ठ और दस्यु=विनाशकारी, दो प्रकार के स्वभाव वाले पुरुष हैं। हे इन्द्र ! आप बर्हिष्मान् अर्थात् परोपकार रूप यज्ञ में रत आर्यों की सहायता के लिये दस्युओं का नाश करें। हमें शक्ति दें कि अव्रती अर्थात् अनार्य दुष्ट पुरुषों पर हम शासन करें। हे इन्द्र ! हम सदा ही तुम्हारी स्तुतियों की कामना करते हैं। आप आर्य सद्-विचारों के प्रेरक बनें, जिससे हम अनार्यत्व को त्याग कर आर्य बनें।

आर्य भारत के मूलवासी

किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा, कि आर्य लोग ईरान से आये और यहां के जंगलियों को लड़कर जय पा के निकाल के इस देश के राजा हुए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत
सत्यार्थप्रकाश समु० ८

ओ३म्

क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है ?

पुस्तक का उद्देश्य

पाश्चात्य मान्यता के देशी और विदेशी लेखकों का मत है कि, ऋग्वेद में आये आर्य, दास तथा दस्यु शब्द भिन्न-भिन्न जातियों के बोधक हैं। उनका पक्ष है कि आर्य लोग भारत के मूल-निवासी नहीं थे। भारत के आदिवासी, जिन्हें वेद में दास और दस्यु शब्दों से संकेतित किया गया है, वे भारत के द्रविड़, कोल, भीलादि मूल-निवासी थे।

आर्यों का धर्म, सभ्यता, रंग-रूप, आकृति, भाषादि भिन्न थीं और आदिवासी जातियां जो थीं उनका वर्ण काला था, उनकी नाक चपटी थी, वे शिश्न अर्थात् लिङ्ग की पूजा किया करते थे। उनका आर्यों के साथ सदा युद्ध हुआ करता था। आर्यों की बुद्धि प्रखर थी, उनके शस्त्र भी भयंकर थे। अतः वे प्रायः आदिवासियों पर विजयी हो जाते थे और उन्हें अपना

दास बना लेते थे। इन मूल-निवासियों के लिये दास तथा दस्यु, जो घृणा-वाचक शब्द हैं, का वेद में प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार के निर्मूल और कल्पित पाश्चात्य मत का खण्डन ही इस पुस्तक का मूल उद्देश्य है। ये सारी भ्रान्तियां फैलाना वैदिक-धर्म को भ्रष्ट करने, अंग्रेजी राज्य को सुदृढ़ करने और भारतीयों को ईसाई बनाने का षड्यन्त्र था। इस पुस्तक में सिद्ध किया गया है कि वेद में व्यवहृत आर्य, दास तथा दस्यु शब्द जाति-वाचक नहीं हैं, प्रत्युत गुण-वाचक हैं। जब आदि-वासी कोई पृथक् जाति ही नहीं थी, तो आर्यों का उन से युद्ध करना स्वयं खण्डित हो जाता है।

पुस्तक को आरम्भ करने से पूर्व आर्य, दास, दस्यु शब्दों की व्याकरण द्वारा व्युत्पत्ति दर्शाई गई है। व्याकरण के ज्ञान से शून्य इन ज्ञानलव-दुर्विदग्ध लेखकों ने अर्थों के अनर्थ किये हैं। वेद के मर्म को समझने के लिये शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष तथा व्याकरण का ज्ञान होना आवश्यक है। महाभाष्य में इन ६ अङ्गों में भी व्याकरण को प्रधानता दी गई है।[1] निरुक्त और व्याकरण वेद को समझने के लिए नेत्रों के समान हैं।

●

---

१. प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्। प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति। अ० १, पा० १, आ० १॥

आर्य शब्द की व्युत्पत्ति

भ्वादिगण पठित **ऋ गतौ** धातु से "**अचो यत्**" (अ० ३।१।९७) सूत्र से **भाव-कर्म** अर्थ में अजन्त धातुओं से सामान्य रूप से **यत्** कृत्य (कृत्) प्रत्यय का विधान किया है। "**अचो यत्**" सूत्र का अपवाद है—"**ऋहलोर्ण्यत्**" (अ० ३।१।१२४) सूत्र। इससे ऋकारान्तों से **यत्** के स्थान में **ण्यत्** प्रत्यय का विधान है। जैसे **कार्यः कार्यम्, हार्यः हार्यम्**। इसी प्रकार ऋ धातु से भी ण्यत् होता है। परन्तु "**ऋहलोर्ण्यत्**" सूत्र का अपवाद है—"**अर्यः स्वामिवैश्ययोः**" (अ० ३।१।१०३)। इस सूत्र से स्वामी और वैश्य अर्थ में **अर्य** पद की सिद्धि की है, परन्तु स्वामी और वैश्य अर्थ से अन्यत्र भाव-कर्म-विषयक अर्थ में "**ऋहलोर्ण्यत्**' से **ण्यत्** होकर आर्य बनता है।

इस आर्य शब्द का अर्थ होगा—**गमनीयः प्रापणीयः, अभिगमनीयः अभिगन्तव्यः**। जहां आर्य शब्द का इन्द्र-सोम-ज्योति-व्रत-पूजा आदि के विशेषण रूप में अथवा अनार्य के विलोम में प्रयोग होगा, वहां आर्य=गमनीय-प्रापणीय का सामान्य अर्थ श्रेष्ठ होगा, परन्तु जहां यह वृत्र=शत्रु आदि का विशेषण रूप में प्रयुक्त होगा, तब इसका अर्थ अभिगमनीयः अभिगन्तव्यः **चढ़ाई के योग्य बलवान्** होगा।

स्वामी अर्थ में व्युत्पन्न **अर्य** शब्द जो ईश्वर का भी वाचक है[1] उससे "**तस्यापत्यम्**" (अ० ४।१।९२) सूत्र से तद्धित **अण्**

---

१. निघण्टु २।२॥

प्रत्यय होकर अर्थ होगा—**अर्यस्य स्वामिनः ईश्वरस्य पुत्रः**, जैसा कि निरुक्तकार ने "**आर्यः ईश्वरपुत्रः**"[1] व्याख्या में दर्शाया है।

दूसरा आर्य शब्द "**तस्येदम्**" (अ० ४।३।१२०) सूत्र से अर्य से **अण्** प्रत्यय होकर बनता है। इसका अर्थ होगा—**अर्यस्य स्वामिनः ईश्वरस्य, वैश्यस्य इदम्**=स्वामी, ईश्वर वा वैश्य का अपना स्व धन=ऐश्वर्य आदि।

उपसंहार

इसका निष्कर्ष यह है कि प्रसंगवश—

(१) आर्य शब्द जहा विशेषण रूप में प्रयुक्त होगा वहां **कृदन्त आर्य** शब्द होगा, उसका विशेष्य के अनुसार **श्रेष्ठ अथवा बलवान्** अर्थ होगा।

(२) जहां आर्य-शब्द विशेष्य रूप में प्रयुक्त होगा वहां **ईश्वरस्य पुत्रः** अर्थवाला **तद्धितान्त आर्य** शब्द ससझना चाहिये।

(३) जहां ईश्वर के ऐश्वर्य का स्वामी या वैश्य के धन सम्पत्ति के रूप में प्रयुक्त होगा, वहां '**तस्येदम्**' अर्थवाला आर्य शब्द होगा।

विशेष—तीनों अर्थों में प्रयुक्त आर्य शब्द ऋग्वेद में आद्युदात्त ही है।

हम पूर्व लिख चुके हैं कि **अर्य** शब्द वेद में ईश्वर-वाचक हैं। उसके निदर्शनार्थ एक मन्त्र उपस्थित करते हैं—

---

१. निरुक्त ६।२६ ॥

यो अर्यो मर्तभोजनं परादर्दाति दाशुषे।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भंजा भूरि ते वसु
भक्षीय तव राधसः ॥ ऋक् १।८१।६ ॥

अर्थ—जो (अर्यः) ईश्वर दानी पुरुषों को मनुष्यों के भोग्य पदार्थ प्रदान करता है, वह इन्द्र हमें भी भोग्य पदार्थ देवे। हे इन्द्र! हम सब को बांटकर ये पदार्थ दो। तेरे पास न समाप्त होने वाला भण्डार है, हम तुम्हारे ऐश्वर्य का भोग करें अर्थात् उस धन का हमें भी भागी बना।

यास्काचार्य निर्मित निघण्टु २।२२ में 'अर्य' शब्द ईश्वर नामों में पढ़ा है—**राष्ट्री। अर्यः। नियुत्वान्। इन इनः। इति चत्वारि ईश्वरनामानि।**

निरुक्त ६।२६ में ऋक् १।११७।२१—

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥

मन्त्र की व्याख्या में आर्य-पद की व्याख्या करते हुए यास्काचार्य ने लिखा है—'**आर्यः ईश्वरपुत्रः**।' अर्थात् 'आर्य' ईश्वर के पुत्र का नाम है।

पाणिनि ने तद्धित-प्रकरण के **तस्यापत्यम्** (अ० ४।१।९२) सूत्र से और "**तस्यदेम्**" (अ० ४।१।१२०) सूत्र से आर्यपद की सिद्धि की है, और यास्काचार्य ने 'आर्य' शब्द को **ईश्वर-पुत्र** के अर्थ में माना है।

'ईश्वर' शब्द 'ईश ऐश्वर्ये' धातु से बनता है। अतः 'ईश्वर' पद से परमेश्वर अर्थ से भिन्न ऐश्वर्यवान्, उत्तम गुणयुक्त, श्रेष्ठ, सद्गुणपरिपूर्ण अर्थों का भी ग्रहण होता है।

आर्य शब्द का कृदन्त और तद्धितान्त रूप में वेद में प्रयोग

हम पूर्व कह चुके हैं कि आर्य शब्द कृत् **ण्यत्** और तद्धित **अण्** प्रत्यय से निष्पन्न होता है। हम यहां दोनों प्रकार के आर्य शब्दों का वेद में प्रयोग दर्शाते हैं—

भरद्वाज बार्हस्पत्य दृष्ट ऋग्वेद ६।२५।२ का मन्त्र है—

आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः॥

भरद्वाज बार्हस्पत्य प्रार्थना करता है—

अर्थ—हे इन्द्र ! शत्रु सेनाओं को नष्ट करने वाली हमारी सेना की रक्षा करते हुए संग्राम में शत्रु के कोप को नष्ट कर। हमारी स्तुतियों से हे इन्द्र ! हमारा मुकाबला करने वाली सर्वत्र विद्यमान (दासीः विशः) दस्युओं की सेनाओं का आर्य के लिए वध कर[1]।

वही भरद्वाज बार्हस्पत्य ऋषि ऋ० ६।२२।१० में प्रार्थना करता है—

---

१. **'अवतारीः'**—यहां अव पूर्वक तिर्, वध (नाश) अर्थ में आता है। निघण्टु—२।१९ में **अवतिरति** वध अर्थ वाले आख्यातों में पढ़ा है।

आ सं॒यत॑मिन्द्र णः स्व॒स्ति श॑त्रु॒तूर्या॑य बृह॒तीमसृ॑ध्राम् ।
यया॒ दासा॒न्यार्या॑णि वृ॒त्रा करो॑ वज्रिन्त्सु॒तुका॒ नाहु॑षाणि ॥
ऋक् ६।२२।१० ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! शत्रुओं के नाश के लिए न नष्ट होने वाली, बड़ी, निश्चित कल्याण करने वाली शक्ति हमें प्रदान करो। हे वज्रधारी इन्द्र ! जिस शक्ति से मानवीय[1] दास अर्थात् अल्पशक्ति वाला शत्रु तथा 'आर्य' अर्थात् बलवान् शत्रु को हिंसित करते हो।

ऋक् ६।६०।६ मन्त्र-द्रष्टा भी भरद्वाज बार्हस्पत्य ऋषि है। इसमें ऋषि इन्द्र और अग्नि की स्तुति करता है—

हतो वृ॒त्राण्यार्या॑ ह॒तो दासा॑नि॒ सत्प॑ती ।
ह॒तो विश्वा॒ अप॒ द्विषः॑ ॥

अर्थ—हे सद्व्यवहारों के पालक, इन्द्र तथा अग्ने ! आप दोनों दास अर्थात् उपक्षीण (कमजोर) शत्रु, आर्य अर्थात् बलवान् शत्रु, इन दोनों का हनन करते हो। तुम्हीं ने सब द्वेषियों का हनन किया है।

भरद्वाज बार्हस्पत्य ऋषि को इन तीनों मन्त्रों के दर्शन में ऋक् ६।२५।२ मन्त्र में उन्हें 'आर्य' पद का श्रेष्ठ अर्थ में दर्शन हुआ और ऋक् ६।२२।१० तथा ऋक् ६।६०।६ इन दोनों मन्त्रों में उन्हें 'आर्य' पद का आक्रमण करने योग्य बलवान् शत्रु के अर्थ में दर्शन हुआ।

वेदों के अनन्तर जब व्याकरण के नियम बनने लगे तो प्रसिद्ध वैयाकरण मुनि पाणिनि ने आर्य पद के लिए तद्धित

और कृत् दो नियम बनाए। '**तस्येदम्**' और '**तस्यापत्यम्**' सूत्रों से 'अर्य' से 'अण्' प्रत्यय लगा कर आर्य पद की सिद्धि की और कृदन्त में ऋ धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय लगाकर **आर्यः =अरणीयः गमनीयः प्रापणीयः** सिद्ध किया।

उद्गीथ और सायण

सायण से पूर्व का भाष्यकार उद्गीथ तथा सायणाचार्य इन दोनों ने ऋक् १०।८३।१ में कृदन्त का रूप स्वीकार किया है। सायणाचार्य ने ऋक् १०।६९।६ तथा ऋक् १०।१०२।३ संख्या वाले मन्त्रों में कृदन्त का रूप ही अपने भाष्य में माना है।

दास तथा दस्यु शब्दों की व्युत्पत्तियां

'दास' शब्द की व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति

दास शब्द **दसु उपक्षये** दिवादिगण की, **दासृ दाने** भ्वादिगण की, उपक्षयार्थक दसु के णिजन्त रूप, और चुरादिगण की दंशन या भाषणार्थक **दसि**=दंस् णिजन्त धातु से निष्पन्न होता है। इस प्रकार दास शब्द की चार प्रकृतियां हैं—उपक्षयार्थक दसु, दानार्थक दासृ, णिजन्त क्षयार्थक दसु, और दसि= दंस् णिजन्त धातु—

(१) **दसु उपक्षये** धातु से कर्म में **'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्'** (अ० ३।३।१६) सूत्र के **नियम** से कर्म में **घञ्** प्रत्यय होकर बनता है। इसका अर्थ होगा—**दस्यते उपक्षीयते इति दासः** अर्थात् जो साधारण प्रयत्न से क्षीण किया जा सके, ऐसा साधारण व्यक्ति। इस अर्थ में इसका प्रयोग **वृत्र**= **शत्रु के विशेषण रूप में आता है।**

(२) **दासृ दाने** धातु से कर्ता अर्थ में **'अजपि सर्वधातुभ्यः'** (वा० ३।१।१३४) से **अच्** प्रत्यय होकर भी दास शब्द बनता है। इसका अर्थ होगा—**दासति दासते वा यः सः** अर्थात् दाता=दान करने वाला।

इसी दानार्थक दासृ धातु से **'कृल्ल्युटो बहुलम्'** (वा० ३।३।११३) के नियम से जब **'अच्'** या **'घञ्'** प्रत्यय संप्रदान अर्थ में होता है, तब इसका अर्थ होता है—**दासति दासते वा**

अस्मै अर्थात् जिसके लिये दिया जाय। इस दास का अर्थ होता है—भृत्य-किंकर-सेवक आदि।

(३) जब **क्षयार्थक दसु धातु** के णिजन्त रूप से कर्ता में **'अजपि सर्वधातुभ्यः'** (वा० ३।१।१३४) से **'अच्'** प्रत्यय होता है, तब इसका अर्थ होगा—**दासयति य स दासः**[1] अर्थात् जो यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों वा प्रजा आदि को क्षीण करे, वह दास अर्थात् अनार्य व्यक्ति।

(४) जब **"दंसेष्टटनौ न आ च"** इस उणादि (५।१०) सूत्र से कर्ता में **ट** या **टन्** प्रत्यय **दंशन और भाषणार्थक दसि** णिजन्त से होता है, तब अर्थ होता है—**दंसयति दशति भाषते वा यः स दासः** अर्थात् जो काटने=हिंसा करने तथा भाषण करने वाला है वह दास। तब यह हिंसक या वाचाल व्यक्ति के लिये प्रयुक्त होता है।

दास शब्द के दो वैदिक रूप

दास शब्द स्वर की दृष्टि से आद्युदात्त (दास) और अन्तोदात्त (दास) दो प्रकार का उपलब्ध होता है। आद्युदात्त दास शब्द भाव कर्म में 'घञ्' प्रत्यय होकर बनता है। प्रत्यय के ञित् होने से? (अ० ६।१।१९१)से आद्युदात्तत्व प्राप्त होता है। उसको बाधकर **'कर्षात्वतो घञोऽन्तोदात्तः'** (अ० ६।१।१५३) से अन्तोदात्तत्व की प्राप्ति होती है, उसको बाधकर **'वृषादीनां च'** (अ० ६।१।१९७) के आकृतिगणत्व से पुनः आद्युदात्त होता है। **दस्यते इति दासः** जिसको मारा जाये।

कर्त्ता (**दासयति**) अर्थ में अच् प्रत्यय होने से चित् स्वर से अन्तोदात्त स्वर होता है। **दासयतीति** दासः जो मारता

---

१. दासो दस्यतेः, उपदासयति कर्माणि। निरुक्त २।१७॥

है अर्थात् हिंसक। जब चुरादिगणस्थ दंशन और भाषणार्थक दसि=दंस् धातु से ट टन् प्रत्यय होता है तब 'ट' प्रत्ययान्त प्रत्यय-स्वर '**आद्युदात्तश्च**' (अ० ३।१।३) के नियम से अन्तोदात्त होता है और जब 'टन्' प्रत्यय होता है तब प्रत्यय के नित् होने से (अ० ६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर उपपन्न होता है।

'दस्यु' शब्द की व्युत्पत्ति

दस्यु, शब्द '**दसु उपक्षये**' धातु से '**यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच्**' इस उणादि (३।२०) सूत्र से युच् प्रत्यय होता है। **दस्यति नाशयति यः स दस्युः** अर्थात् जो नाश करता है वह दस्यु है।

यास्काचार्य ने '**प्र नू महित्वम्**' (ऋक् १।५९।६) **मन्त्र** की व्याख्या में दस्यु शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया **है**—

दस्युर्दस्यतेः क्षयार्थाद् उपदस्यन्त्यस्मिन् रसा उपदासयति कर्माणि। निरुक्त ७।२३॥

अर्थात् अनावृष्टिकाल में सब **ओषधियों** के रस क्षीण करने वाला होने से यह दस्यु है। कर्मों **के नाश करने** से भी इसे दस्यु कहा गया है।

पाणिनि मुनि और यास्काचार्य दोनों **ने 'दसु'** धातु का 'क्षय' अर्थ दर्शाया है, परन्तु यास्काचार्य ने '**रसों** के शोषण करने' से भी इसे दस्यु कहा है। शोषण और क्षय दोनों का वास्तव में भाव एक ही है, परन्तु मन्त्र में पठित **शम्बर** नामक मेघ से **दस्यु** नामक मेघ की पृथक्ता बताने के लिये **उपदस्यन्त्यस्मिन् रसाः** व्युत्पत्ति दर्शाई है। **अस्मिन्** यह निमि-

त्तार्थ में सप्तमी विभक्ति है.[1] जिसके निमित्त से ओषधि वनस्पतियों के रस क्षीण हो जाते हैं। यह अवर्षक मेघ का नाम है।

मन्त्र में पठित **शम्बर** मेघ नामों (नि० १।१०) में पढ़ा है, उससे भेद दर्शाना अभीष्ट है। शम्बर शीघ्रगामी मेघ का नाम है, यह ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट में बतायेंगे। शीघ्रगामी मेघ भी या तो बरसते नहीं या अल्प वर्षा करने वाले होने से प्रजापीड़क ही होते हैं, अतः वह भी इन्द्र द्वारा वध्य कहा गया है।

दस्यु शब्द वेद में सर्वत्र आद्युदात्त है। ऋग्वेद ८।५५।१; ८।५६।१ में **'दस्यवे वृक'** में सर्वानुदात्तत्व मिलता है, वह अ० २।१।२ तथा ८।१।१९ के नियमानुसार सांहितिक स्वर है।

---

१. द्र० **चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् ।**

काशिका २।३।३६ में उद्धृत ।

आर्य दास दस्यु शब्दों का वेद में मनुष्यों तथा जड़ पदार्थों के लिए प्रयोग

आर्य शब्द का विविध अर्थों में प्रयोग

१. **श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए**—ऋग्वेद १।१०३।३; ऋ० १। १३०।८ तथा १०।४९।३ आदि मन्त्रों में आर्य शब्द श्रेष्ठ तथा उत्तम गुणयुक्त व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है।[१]

२. **इन्द्र का विशेषण**—ऋ० ५।३४।६ तथा ऋ० १०। १३८।३ में आर्य शब्द का प्रयोग इन्द्र के विशेषण रूप में हुआ है।[२]

३. **सोम का विशेषण**—ऋ० ९।६३।५ में आर्य शब्द सोम के विशेषण रूप में आया है।[३]

४. **ज्योति का विशेषण**—ऋ० १०।४३।४ में आर्य शब्द ज्योति के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है।[४]

---

१. दस्यवे हेतिमार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र। १।१०३।३।।
यजमानमार्यं प्रावत् ।१।१३०।८।।
न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ।१०।४९।३।।

२. यथावशं नयति दासमार्यः ।५।३४।६।। ऐन्द्रं सूक्तम्।
विदद् दासाय प्रतिमानमार्यः ।१०।१३८।३।। ऐन्द्रं सूक्तम्।

३. कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। सौम्यं सूक्तम्।

४. ज्योतिरार्यम्।

५. व्रत का विशेषण—ऋ० १०।६५।११ में आर्य शब्द व्रतों के विशेषणरूप में व्यवहृत हुआ है ।[1]

६. प्रजा का विशेषण —ऋ० ७।३३।७ में आर्य शब्द प्रजा के विशेषण रूप में आया है ।[2]

७. वर्ण का विशेषण—ऋ० ३।३४।६ में आर्य शब्द वर्ण का विशेषण है—**आर्यं वर्णम्** ।

वर्ण शब्द का मूल अर्थ है—**व्रियते स्वीक्रीयते इति वर्णः** अर्थात् जो स्वीकार किया जावे **भाव वा कर्म** । अतः **आर्य वर्ण** का अर्थ होगा— श्रेष्ठ भाव वा कर्म ।

वर्ण शब्द **भाव=वृत्ति** अर्थ में भी प्रयुक्त होता है । यथा **उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष** । ऋ० १।१७९।६॥

शब्दस्तोममहानिधि कोश में वर्ण का अर्थ **गुण** भी किया है । अतः ऋ० ३।३४।६ **आर्यं वर्णम्** का अर्थ आर्य भाव, आर्य कर्म, तथा आर्य गुण है ।

दास शब्द का विविध रूपों में प्रयोग

१. नमुचि (मेघ) का विशेषण—ऋक् ५।३०।७ में दास शब्द नमुचि नामक मेघ के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है ।[3]

२. शम्बर (मेघ) का विशेषण—ऋक् ६।२६।५ में दास शब्द शम्बर नामक मेघ के विशेषण रूप में व्यवहृत हुआ है ।[4]

---

१. आर्या व्रता विसृजन्तः ।

२. तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।

३. अत्रा दासस्य नमुचेः ।

४. अव गिरेर्दासं शम्बरं हन् ।

३. शुष्ण (मेघ) का विशेषण—ऋक् ७।१९।२ में दास शब्द शुष्ण नामक मेघ के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[१]

नमुचि, शम्बर और शुष्ण मेघ-विशेषों के नाम हैं। इस के लिये ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट देखें।

४. उपक्षीण (=बल रहित) शत्रु के लिये—दास और आर्य शब्द जब शत्रु के रूप में या उनके विशेषण रूप में व्यवहृत होते हैं, तब **दास** शब्द उपक्षीण=बल-रहित शत्रु और **आर्य** बलवान् शत्रु के लिये प्रयुक्त होता है। यथा ऋग्वेद १०।८३।१ में—**साह्याम दासमार्यं त्वया युजा।**

५. अनार्य के लिये—ऋग्वेद १०।८६।१९ में दास शब्द अनार्य के लिये प्रयुक्त हुआ है।[२]

इसी प्रकार ऋक् १।५१।८ में **दस्यु** शब्द आर्य के विलोम अर्थ में आया है।[३]

६. दास और दस्यु शब्द ऋक् १०।२२।८ में **अज्ञानी, अकर्मा, मानवीय व्यवहार से शून्य** व्यक्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है।[४]

७. दासी विशः (प्रजाः) के विशेषण रूप में—ऋग्वेद ६।२५।२ में दासी शब्द प्रजा के विशेषण रूप में व्यवहृत है।[५]

---

१. दासं यच्छुष्णं कुयवम्।

२. विचिन्वन् दासमार्यम्।

३. विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवः।

४. अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।
   त्वं तस्या मित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय॥

५. आर्याय विशोऽव तारीर्दासीः।

इसी प्रकार ऋक् १०।१४८।२ तथा ऋक् २।११।४ में भी दासी शब्द विशः (प्रजाः) के विशेषण रूप में प्रयुक्त है।[१]

८. **वर्ण विशेषण रूप में**—जैसे ऋक् ३।३४।९ में आर्य शब्द वर्ण के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है,[२] उसी प्रकार ऋक् २।१२।४ में दास शब्द भी वर्ण के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है।[३] अतः यहां भी **दास वर्ण** शब्द का अर्थ भी कुत्सित भाव, वृत्ति तथा गुण है, जातिवाचक नहीं।

९. **भृत्य अर्थ में**—ऋक् ७।८६।७ तथा ऋक् १।९२।८ में दास शब्द भृत्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[४] भृत्यार्थक दास शब्द **दासृ** दाने धातु से निष्पन्न होता है, यह हम पूर्व कह चुके हैं।[५]

दस्यु शब्द का त्रिविध रूपों में प्रयोग

१. **आर्य के विलोम अर्थ में**—ऋक् १।५१।८ में दस्यु शब्द आर्य के विलोम अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[६]

२. **उत्तम कर्म हीन व्यक्ति के लिये**—ऋक् ७।५।६ में दस्यु शब्द उत्तम-कर्म हीन दुष्ट व्यक्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है।[७]

३. ऋग्वेद १०।२२।८ में दस्यु शब्द **अज्ञानी, अव्रती, मानवीय व्यवहार शून्य** व्यक्ति के लिये व्यवहृत हुआ है।[८]

---

१. उभयत्र—दासीर्विशः सूर्येण सह्याः।

२. द्र० पूर्व पृष्ठ १६। ३. दासं वर्णमधरं गुहाकः।

४. क्रमशः—अरं दासो न मीळ्हुषे कराणि ॥

, दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ॥

५. द्र० पूर्व पृष्ठ ११। ६. वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवः।

७. त्वं दस्यूंरोकसो अग्न आजे। ८. द्र० पूर्व पृष्ठ १७ टि० ४।

४. दस्यु शब्द ऋक् १।५९।६ में मेघ के अर्थ में आया है।[1] ऋक् ६।२६।५ में दास शब्द भी शम्बर के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है, यह पूर्व कहा जा चुका है।[2] निरुक्त ७।२३ में भी इसे मेघ का विशेषण माना है।

५. दस्यु का अनास् विशेषण—ऋक् ५।२९।१० में दस्यून् का विशेषण **अनासः** प्रयुक्त हुआ है।[3] 'अनास्' शब्द **णासृ** (=नासृ) शब्दे धातु से कर्ता में क्विप् प्रत्यय से निष्पन्न होता है। **नासन्त इति नासः**, न नासन्ते, नास्ति वा नाः= **शब्दो येषु ते अनासः**, अर्थात् जो शब्द नहीं करते अथवा जिनमें शब्द नहीं है अर्थात् गर्जना-रहित मूक मेघ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि दस्यु शब्द मनुष्य और अचेतन पदार्थों के लिये जहां भी प्रयुक्त हुआ है, वहां सर्वत्र उपक्षयकारी =विनाशकारी सामान्य अर्थ ही समझना चाहिये।

०

---

१. वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत्।
२. पूर्व पृष्ठ १६ टि० ४।
३. अनासो दस्यूंरमृणो वधेन।

ऋग्वेद में आर्य पद का प्रयोग

आर्यः

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति ।

ऋक् १०।३८।३ ॥

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द शत्रु के लिये प्रयुक्त हुआ है। यहां इसका अर्थ है— **"अभिगन्तव्यः"** वह महान् शत्रु जिस पर युद्ध के लिये अभिगमन (चढ़ाई) करना चाहिये। यह '**ऋ गति-प्रापणयोः**' धातु से निष्पन्न होता है।

विदद् दासाय प्रतिमानमार्यः । ऋक् १०।१३८।३ ॥

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द इन्द्र के विशेषण रूप में आया है।

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ।

ऋक् ५।३४।६ ॥

अर्थ—युद्ध में रथचक्र को वेगवान् करता है। दुष्टों का नाश करने वाला इन्द्र अयजनशील से दूर रहता है और यजनशील की वृद्धि करता है। वह सब शत्रुओं का दमन करने वाला है।

वह भयंकर है। वह आर्य इन्द्र, अपनी इच्छानुसार दास अर्थात् विनाशकारी को अपने वश में कर लेता है।

टिप्पणी—यहां आर्य शब्द इन्द्र के विशेषण में आया है। इस की व्युत्पत्ति होगी—'अर्यस्य अयम् आर्यः'—'तस्येदम्' (पा० ४।३।१२०) सूत्र से अण् प्रत्यय आकर आर्य शब्द की सिद्धि हुई है।

आर्यम्

आर्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र । ऋक् १।१०३।३ ॥

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द उत्तम गुण युक्त श्रेष्ठ व्यक्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है।

हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् । ऋक् ३।३४।९ ॥

इस मन्त्र में भी 'आर्य' का अर्थ उत्तमगुणयुक्त श्रेष्ठपुरुष है।

इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद् ।

ऋक् १।१३०।८ ॥

यहा पर 'आर्य' शब्द यजमान के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है। (आर्यम् अरणीयं सर्वैः गन्तव्यम्=सायणः)

आर्यमृतस्य भागे यजमानमा भजद् ।

ऋक् १।१५६।५ ॥

यहा पर भी 'आर्य' शब्द यजमान के विशेषण में आया है.

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । ऋक् ९।६३।५ ॥

यहां 'आर्य' शब्द सोम के विशेषण में आया है। इसका अर्थ है कल्याणकारी।

स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् । ऋक् १०।४३।४ ।।

यहां पर आर्य का अर्थ है श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम । यहां 'आर्य' पद ज्योति के विशेषण में आया है ।

न यो ररआर्यं नाम दस्यवे । ऋक् १०।४९।३ ।।

यहां 'आर्य' शब्द दस्यु के विलोम अर्थ में आया है । जिस का अर्थ है उत्तम गुण युक्त श्रेष्ठ पुरुष ।

साह्याम दासमार्यं त्वया युजा । ऋक् १०।८३।१ ।।

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द शत्रु के विशेषण में आया है । यहां अर्थ होगा—'अभिगन्तव्यः आर्यः' अर्थात् वह बलवान् शत्रु जिस पर आक्रमण किया जाए ।

विचिन्वन्दासमार्यम् । ऋक् १०।८६।१९ ।।

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द दास के विलोम अर्थ में आया है । यहां अर्थ होगा—कल्याणकारी परोपकारी श्रेष्ठ पुरुष ।

आर्यस्य

आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य । ऋक् ७।१८।७ ।।

यहां 'आर्य' का अर्थ है—श्रेष्ठ, कर्मशील पुरुष ।

आर्यस्य वर्धनमग्निम् । ऋक् ८।१०३।१ ।।

यहां पर 'आर्य' शब्द श्रेष्ठ, उत्तम गुण युक्त व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

दासस्य वा मघवन्नार्यस्य । ऋक् १०।१०२।३ ।।

यहां 'आर्य' शब्द शत्रु के विशेषण में आया है । जिसका अर्थ है—महान् ।

आर्या=आर्यौ=आर्याणि

उत त्या सद्य आर्या । ऋक् ४।३०।१८ ।।

यहां पर 'आर्या' शब्द दो शत्रुओं के विशेषण में आया है। जिसका अर्थ होगा—अभिगन्तव्यौ=जिन पर आक्रमण करना चाहिए ऐसे महान् शत्रु ।

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।

ऋक् ६।३३।३ ।।

यहां 'आर्या' शब्द 'वृत्राणि'=शत्रु के विशेषण में आया है। जिसका अर्थ होगा—महान् शत्रु ।

हतो वृत्राण्यार्या । ऋक् ६।६०।६ ।।

इस मन्त्र में भी 'आर्या' शब्द 'वृत्राणि' का विशेषण है। यहां भी अर्थ होगा—महान् शत्रु ।

एते धामान्यार्या । ऋक् ९।६३।१४ ।।

इस मन्त्र में 'आर्या' का अर्थ श्रेष्ठ उत्तम गुण युक्त पुरुष है।

आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ।

ऋक् १०।६५।११ ।।

यहां 'आर्या' शब्द का अर्थ ईश्वरीय है, और यहां 'आर्या' पद व्रत के विशेषण में आया है—आर्याणि व्रतानि ।

दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ । ऋक् १०।६९।६ ।।

यहां पर 'आर्या' शब्द 'वृत्राणि' अर्थात् शत्रु का विशेषण है। जिसका अर्थ होगा—महान् शत्रु ।

आर्याः

तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः । ऋक् ७।३३।७ ।।

इस मन्त्र में 'आर्याः' बहुवचन है और 'प्रजाः' के विशेषण में आया है। जिसका अर्थ है श्रेष्ठ।

यदी विशो वृणते दस्ममार्याः । ऋक् १०।११।४ ।।

यहां भी 'आर्याः' 'विशः' का विशेषण है। अर्थ होगा—'श्रेष्ठ प्रजा'।

आर्याणि

यया दासान्यार्याणि वृत्रा करः । ऋक् ६।२२।१० ।।

इस मन्त्र में 'आर्याणि' 'वृत्राणि'=शत्रु का विशेषण है।

दासा च वृत्रा हतमार्याणि च । ऋक् ७।८३।१ ।।

यहां भी 'आर्याणि' पद, 'वृत्रा'=वृत्राणि=शत्रु का विशेषण है। जिस का अर्थ होगा—महान् शत्रु।

आर्यान्

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवः । ऋक् १।५१।८ ।।

इस मन्त्र में 'आर्य' पद दस्यु के विलोम अर्थ में आया है। इसका अर्थ होगा—श्रेष्ठ उत्तम गुणयुक्त परोपकारी मनुष्य।

आर्याय

वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय । ऋक् १।५९।२ ।।

यहां 'आर्य' पद उत्तम गुण युक्त विद्वान् मनुष्य के लिए आया है।

उरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय । ऋक् १।११७।२१ ।।

इस मन्त्र में 'आर्य' का ईश्वर पुत्र अर्थ होगा। निरुक्त ६।२६ में इस मन्त्र की व्याख्या में यास्कमुनि ने लिखा है कि आर्यः ईश्वरपुत्रः। यहां अपत्यार्थ में आर्य शब्द की सिद्धि है।

अपावृणोर्ज्योतिरार्याय । ऋक् २।११।१८ ।।

यहां 'आर्य' का अर्थ होगा—उत्तम गुण युक्त, श्रेष्ठ, कर्मानुष्ठाता।

अहं भूमिमददामार्याय । ऋक् ४।२६।२ ।।

इस मन्त्र में 'आर्य' पद श्रेष्ठ, गोपालक, कृषक के अर्थों में आया है। यहां पर 'अर्यः स्वामिवैश्ययोः' (पा० ३।१।१०३) सूत्र के आधार से अर्य शब्द वैश्य के अर्थ में आया है और उस से अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय से आर्य पद बना है, अर्थात् गोपालक तथा कृषक की सन्तान।

एकः कृष्टीरवनोरार्याय । ऋक् ६।१८।३ ।।

इस मन्त्र में 'आर्य' पद कर्मशील मनुष्य के अर्थ में आया है।

आर्याय विशोऽव तारीर्दासीः। ऋक् ६।२५।२ ।।

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द उत्तम गुण युक्त, यजनशील व्यक्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है।

उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय । ऋक् ७।५।६ ॥

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द कर्मशील व्यक्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है।

आर्येण

विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् । ऋक् २।११।१६ ॥

इस मन्त्र में 'आर्य' शब्द इन्द्र के विशेषण में आया है।

आर्यं वर्णम्

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥
ऋक् ३।३४।९ ॥

अर्थ—इन्द्र प्रजा केलिए अश्वों को देता है। उसी ने प्राणियों के लोक व्यवहार के लिए सूर्य भी दिया है। वही अनेक प्रकार के दूध आदि भोगों को देने वाली गौवों को प्रदान करता है। उसी ने स्वर्ण आदि धन तथा अन्य ऐश्वर्य प्रदान किया है। वही इन्द्र चोर, डाकू, उपक्षयकारी दस्युओं का हनन करके 'आर्य' (श्रेष्ठ) वर्ण की रक्षा करता है।

टिप्पणी—१. वर्ण शब्द का अर्थ यहां जातिवाचक नहीं, 'आर्य-भावं कर्म वा वृणोति इति आर्यं वर्णः।' जो पुरुष श्रेष्ठ भाव या श्रेष्ठ कर्म का वरण करता है वही आर्यवर्ण है।

२. इन्द्र के लिये वर्ण पद का प्रयोग—ओं त्ये····सुविताय वर्णम् [ऋक् १।१०४।२] वर्णं-वरणीयम् इन्द्रम् । स्कन्द-भाष्य ।

३. कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः । ऋक् १।७३।७ ॥

इस मन्त्र में वर्ण शब्द कृष्ण और अरुण दो रंगों के लिए आया है ।

४. उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष । ऋक् १।१७९।६ ॥

इस मन्त्र में उभौ वर्णों से हृदय के दो प्रकार के भावों (वृत्तियों) का वर्णन है । अर्थात् एक—काम की भावना, और दूसरी—तप की भावना है । इस मन्त्र के आधार से सिद्ध है कि 'वर्ण' शब्द मानसिक भावों के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

५. 'शब्दस्तोममहानिधि कोष' में वर्ण का अर्थ 'गुण' है—अर्थात् आर्य गुणों से युक्त पुरुष को आर्यवर्ण कहा जाता है । जो वेद के रहस्य को नहीं जानते वे अज्ञानता से यहां 'आर्य कोई जाति थी' ऐसा मानते हैं, परन्तु वेदवित् इस प्रकार के मिथ्या अर्थ को स्वीकार नहीं कर सकते ।

आर्यत्व का विस्तार

अन्नं गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वताँ अपः ।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ।
ऋक् १०।६५।११ ॥

अर्थ—अन्न, गौ, घोड़े, ओषधि, वनस्पति, पृथ्वी, पर्वत और जलों को उत्पन्न करते हुए, सूर्य को द्युलोक में स्थापित करते हुए, ये (सुदानवः) अर्थात् दानी दिव्य शक्तियां, आर्य व्रतों अर्थात् श्रेष्ठ कर्मों को फैलाती हैं ।

टिपणी—इस मन्त्र में यह भाव आया है कि—सूर्य, चन्द्र आदि दिव्य शक्तियाँ सदा आर्य व्रतों को फैलाने वाली हैं । इन सब शक्तियों के

आधारभूत उत्पादक तथा संचालक परमात्मा का भी यही लक्ष्य है कि संसार में मानव-कल्याण के लिये आर्यत्व अर्थात् श्रेष्ठ कर्मों का विस्तार हो और क्षयकारी दस्यु कर्मों का ह्रास हो।

अहमत्कं कवये शिश्नथं हथैरहं कुत्समावमाभिरूतिभिः।
अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं न यो रर आर्यं नाम दस्यवे॥
ऋक् १०।४९।३ ॥

अर्थ—मैं मेधावी पुरुष के लिये अन्धकार को फैलाने वाले शत्रु को कई प्रहारों से हिंसित कर देता हूं, और (कुत्स) अर्थात् विद्यारूपी वज्र को हाथ में लेकर अन्धकार को छेदन करने वाले व्यक्ति की रक्षा करता हूं। मैं (शुष्ण) अर्थात् पुरुषों को शोषण करने वाले दस्यु को मारने के लिये अपने वज्र को नियमित करता हूं। मैं यह श्रेष्ठ आर्य नाम विनाशकारी दस्यु को कभी नहीं देता।

विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र।
ऋक् १।१०३।३ ॥

अर्थ—हे वज्रधारी इन्द्र! दस्यु के लिये अपने अस्त्र से प्रहार कर और आर्य के बल, यश, धन तथा अन्न की वृद्धि कर।

इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु। ऋक् १।१३०।८ ॥

अर्थ—सैकड़ों प्रकार से रक्षा करने वाला इन्द्र आर्य की सब युद्धों में रक्षा करता है।

प्रावो॑ दे॒वाँ अति॑रो॒ दास॒मोजः॑ प्र॒जायै॑ त्व॒स्यै॑ यदशि॑क्ष इन्द्र ।

ऋक् १०।५४।१ ॥

अर्थ – हे इन्द्र ! विनाशकारी दास के बल का नाश कर, और देवों (विद्वानों) की रक्षा कर । हे भगवन् ! इस धार्मिक प्रजा को ओज प्रदान कर ।

टिप्पणी – देव का अर्थ विद्वान् है –

विद्वांसो हि देवाः । श० ब्रा० ३।७।३।१० ॥

देवा वै श्रमेण तपसा श्रतचर्येणासुरान् रक्षांस्यत्यभवन् ।

जै० उपनि० ब्रा० ३।३५२ ॥

इस प्रकरण में वेद में आये 'आर्य' शब्द के विविध विभक्तियों के प्रयोगों का निदर्शन कराया गया है । इससे स्पष्ट है कि ऋग्वेद में 'आर्य' शब्द का विविध अर्थों में प्रयोग होने पर भी **जाति विशेष** के लिये, जैसा कि पाश्चात्य मतानुयायियों का विचार है, कहीं प्रयोग नहीं हुआ है । जब आर्य कोई जाति ही नहीं है तब उसका बाहर से आना, यहां के तथाकथित आदिवासियों से युद्ध करना, उन्हें पराजित करना और दास बना लेना आदि मान्यताएं स्वत: खण्डित हो जाती हैं ।

अब अगले प्रकरण में ऋग्वेद में प्रयुक्त **दास** शब्द के विषय में लिखेंगे ।

ऋग्वेद में दास पद

दासः

यो नो दास आर्यो वा । ऋक् १०।३८।३ ॥

इस मन्त्र में 'उपक्षयकारी' को 'दास' कहा गया है। **दस्यते उपक्षीयते इति दासः, उपक्षयितव्यः।** यास्काचार्य ने भी २।१७ में ऋक् १।३२।११ **"दासपत्नीरहिगोपाः"** मन्त्र की व्याख्या में **"दासो दस्यतेरुपक्षयति कर्माणि"** यह व्याख्या की है।

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे । ऋक् ५।३०।९ ॥

यहां पर 'दास' नमुचि अर्थात् जल न छोड़ने वाले मेघ के विशेषण में आया है। यहां इसका अर्थ होगा—उपक्षयिता= नाश करने वाला।

अरं दासो न मीळ्हुषे । ऋक् ७।८६।७ ॥

यहां 'दास' शब्द दासृ दाने धातु से बना है। 'दास्यते अस्मै इति दासः' जिसे दिया जाए वह दास है। यहां पर भृत्य के अर्थ में दास पद आया है।

दासम्

यो दासं वर्णमधरं गुहा कः। ऋक् २।१२।४॥

यहां पर 'दास' शब्द वर्ण के विशेषण में आया है। दास भावं कर्म वा वृणोति इति दासं वर्णम्। यहां दास शब्द विनाशकारी अर्थ में आया है।

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासम्। ऋक् ३।३४।१॥

यहां 'दास' का अर्थ होगा उपक्षयकारी।

यथा वशं नयति दासमार्यः। ऋक् ५।३४।६॥

यहां पर हानि पहुंचाने वाले दुष्ट पुरुष के लिए 'दास' पद प्रयुक्त हुआ है।

अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्। ऋक् ६।२६।५॥

यहां 'दास' शब्द शम्बर के विशेषण में आया है। निघण्टु १।१० में शम्बर मेघ नामों में पढ़ा गया है। निघण्टु १।१२ में शम्बर उदक नामों में भी पढ़ा गया है। जिसका अर्थ है—जिसमें जल भरा हुआ है।

दासं यच्छुष्णं कुयवम्। ऋक् ७।१९।२॥

यहां 'दास' शब्द शुष्ण के विशेषण में आया है। 'शुष्णः शोषयतीति' अर्थात् शोषण करने वाला। शुष्ण का विशेषण होने से दास शब्द का यहां अर्थ होगा विनाशकारी।

वृत्रेव दासं वृत्रहारुजम्। ऋक् १०।४९।६॥

यहां पर 'दास' शब्द 'नववास्त्वं' तथा 'बृहद्रथं' के विशे-

षण में आया है। यहां दास का अर्थ होगा—'उपक्षययितव्य'। यहां भी कर्मवाच्य में दास पद आया है, अर्थात् नाश करने योग्य शत्रु।

प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः। ऋक् १०।५४।१ ॥

यहां 'दास' शब्द देवों के विलोम अर्थ में आया है, जिसका अर्थ होगा—'दासयति विलोपयति कर्माणि स दासः' अर्थात् शुभकर्मों का लोप करने वाला।

त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दासम्। ऋक् १०।७३।७

यहां पर 'दास' नमुचि अर्थात् न जल छोड़ने वाले मेघ के विशेषण में आया है। यहां इसका अर्थ—होगा हानि-कर।

साह्याम दासमार्यम्। ऋक् १०।८३।१ ॥

यहां पर 'दास' का अर्थ होगा—उपक्षीण अर्थात् अल्प शत्रु। यहां आर्य शब्द जिसका अर्थ है महान् शत्रु, इसके विलोम अर्थ में आया है।

विचिन्वन्दासमार्यम्। ऋक् १०।८६।१९ ॥

इस मन्त्र में 'दास' शब्द का अर्थ है—दुष्ट पुरुष। यहां आर्य पद के विलोम अर्थ में दास पद आया है।

स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन्। ऋक् १०।९९।६ ॥

यहां 'दास' शब्द 'वराह' के विशेषण में आया है। 'वराहः' शब्द निघण्टु १।१० में मेघ नामों में पढ़ा है। वराह का अर्थ होगा—**वराहो मेघो भवति वराहारः 'वरमाहारमाहार्षी' इति**

च ब्राह्मणम् । निरुक्त अ० ५ । खं० ४ ॥ यहां 'वरम् उदकं आहरतीति वराहः' ।

अमर्त्यं चिद् दासं मन्यमानम् । ऋक् २।१२।२ ॥

यहां 'दास' का अर्थ होगा—विनाशकारी ।

उत दासं कौलितरम् । ऋक् ४।३०।१४ ॥

इस मन्त्र में 'दास' शब्द शम्बर का विशेषण है । शम्बर शब्द निघण्टु १।१० में मेघ नामों में पढ़ा गया है ।

यः सृबिन्दुमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम् ।

ऋक् ८।३२।२ ॥

इस मन्त्र में 'दास' शब्द सृबिन्द, अनर्शनि, पिप्रु और अहीशुव नाम के असुरों (मेघों) के विशेषण में आया है । गति, आकार, वर्ण के भेद से इन मेघों के नाम पृथक्-पृथक् आए हैं । जिनका वर्णन हम परिशिष्ट में करेगें । ये मेघ हैं, क्योंकि इन्द्र द्वारा इन से जल को छुड़ाने का वर्णन किया गया है ।

नि दासं शिश्नथो हथैः । ऋक् ८।७०।१० ॥

इस मन्त्र में हानि पहुंचाने वाले दुष्ट व्यक्ति का नाम 'दास' है ।

द्रासस्य

अयं प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ।

ऋक् २।२०।६ ॥

यहां 'द्रासस्य' शब्द 'अर्शसानस्य' का विशेषण है । यहां

पर 'अर्शसानस्य दासस्य' का अर्थ है—प्रजा को कष्ट देने वाला।

शिरो दासस्य सं पिणग्वधेन । ऋक् ४।१८।९ ।।

यहां 'दासस्य' का अर्थ है—'क्षीण मेघ'।

उत दासस्य वर्चिनः । ऋक् ४।३०।१५ ।।

इस मन्त्र में 'दासस्य' शब्द 'वर्चिनः' का विशेषण है। 'वर्चिनः' भी एक प्रकार का मेघ है। जिसका हम परिशिष्ट में वर्णन करेगें। 'दासस्य' का अर्थ होगा—लोकों का विनाश करने वाला।

शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् । ऋक् ५।३०।८ ।।

इस मन्त्र में 'दास' शब्द 'नमुचि'=जल न छोड़ने वाले मेघ का विशेषण है।

समत्सु दासस्य नाम चित् । ऋक् ५।३३।४ ।।

यहां 'दासस्य' का अर्थ होगा—वृष्टि का प्रतिबन्धक उपक्षयकारी मेघ।

वर्धर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः । ऋक् ८।२४।२७ ।।

यहां 'दास' का अर्थ होगा—दुष्ट पुरुष। निरुक्त २।१७ के अनुसार जो शुभ कर्मों का लोप करता है, वह दास है।

गुष्पितमोजो दासस्य दम्भय । ऋक् ८।४०।६ ।।

यहां 'दास' शब्द का अर्थ होगा—हानि पहुंचाने वाला शत्रु।

अकर्मा दस्युरभि नो...दासस्य दम्भय ।

ऋक् १०।२२।८ ॥

इस मन्त्र में 'दास' और 'दस्यु' व्यक्तियों के लक्षण बताए गए हैं। जो व्यक्ति अज्ञानी, अन्यव्रत और अकर्मा हैं, जो पुरुष मनुष्य देह धारण करके भी मानवीय व्यवहारों और आचार से शून्य हैं, वे दास और दस्यु कहे जाते हैं।

दासा=दासौ

अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्बरं च ।

ऋक् ६।४७।२१ ॥

इस मन्त्र में 'दासा=दासौ' शब्द वर्चिन् और शंबर नामक दो मेघों के विशेषण में आया है। यहाँ इसका अर्थ होगा—उपक्षयकारी।

उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा ।
यदुस्तुर्वश्च मामहे । ऋक् १०।६२।१० ॥

इस मन्त्र में 'दास' शब्द यदु और तुर्व इन दो प्रकार के मनुष्यों के विशेषण में आया है। यहां दासृ दाने भ्वादि धातु से देने वाले अर्थ में दास शब्द आया है। यास्कनिर्मित निघण्टु २।३ में **'यदवः'** तथा **'तुर्वशाः'** मनुष्यनामों में पढ़े गए हैं। 'यदवः' **यमु उपरमे** भ्वादि धातु से बना है। यम्यते नियम्यते गुरुणा स यदुः अर्थात् जो अपने आचार्य द्वारा कुपथ से रोके जाते हैं, वे 'यदवः' कहलाते हैं। 'तुर्वशाः' **तुर्वी हिंसायाम्** धातु से बना है। जो मनुष्य उच्चव्रत द्वारा काम क्रोध आदि शत्रुओं को मारता है, वह पुरुष तुर्वश है।

टिप्पणी—यह मन्त्र मनु पुत्र नाभानेदिष्ट का है। यदु और तुर्वशु नाभानेदिष्ट के बहुत उत्तर काल में शन्तनु के पुत्र हुए थे। अतः इस मन्त्र में शन्तनु-पुत्र यदु तुर्वशु का निर्देश नहीं हो सकता। निरुक्तानुसार मनुष्यनाम मानने पर दो प्रकार के मनुष्य समूह का निर्देश सम्भव है।

दासपत्नीः

दासपत्नीरहिगोपाः । ऋक् १।३२।११॥

यहां 'दासपत्नी' शब्द का अर्थ है कि सब को नाश करने वाला वृत्र जो मेघ है, वह जिन जलों का स्वामी है, उन जलों का नाम है दासपत्नीः। निरुक्त २।१७ में **'दासो दस्यतेः, उपदासयति कर्माणि'** अर्थ लिखा है।

दासवेशाय

दासवेशाय चावहः । ऋक् २।१३।८॥

यहां पर 'दास' का अर्थ शत्रु है। 'दासवेशाय' का अर्थ होगा—शत्रुओं के नाश के लिए।

दासप्रवर्गम्

दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् । ऋक् १।९२।८॥

'दासानां कर्मकराणां प्रवर्गः संघः यस्मिन्, तं दासप्रवर्गम्' यहां 'दास' का **दासृ दाने** धातु से भृत्य वा कर्मकर अर्थ होगा। **दीयतेऽस्मै** इति दासः—भृत्य सेवक।

दासीः विशः

आर्याय विशोऽवतारीर्दासीः । ऋक् ६।२५।२॥

यहां पर 'दासीः' शब्द 'विशः' का विशेषण है। निघण्टु

२।३ में विशः मनुष्यनामों में पढ़ा गया है। अर्थात् वे मनुष्य जो विनाशकारी हैं।

दासीर्विशः सूर्येण सह्याः । ऋक् १०।१४८।२ ॥

यहां 'दासीः विशः' का अर्थ होगा उपक्षयकारी से सम्बन्ध रखने वाली प्रजा अर्थात् आसुरी प्रजा।

दासीर्विशः सूर्येण सह्याः । ऋक् २।११।४ ॥

यहां भी 'दासीर्विशः' का अर्थ होगा—आसुरी प्रजा।

विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः । ऋक् ४।२८।४ ॥

यहां 'दासीर्विशः' का अर्थ होगा—कर्म हीन मानुषी प्रजा।

दासं वर्णम्

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥
ऋक् २।१२।४ ॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! इन्द्र वह है जिसने इन सब भुवनों को गतिशील बनाया है। इन्द्र वह है जो दास वर्ण अर्थात् उपक्षयकारी चोर, डाकू आदि वृत्ति वाले मनुष्य को नीचे गुफा में अर्थात् घोर नरक—दुःखमय स्थान में धकेलता है। वह इन्द्र शिकारी की भांति लक्ष्य को जीत कर दुष्टों के पुष्ट करने वाले धनों को उनसे छीन लेता है।

टिप्पणी—इस मन्त्र में दास वर्ण से जाति का ग्रहण नहीं है। वर्ण शब्द वृञ् वरणे धातु से बना हैं। दासभावं दास कर्म वा वृणोति इति दासवर्णः। जो क्षयकारी दास भाव (वृत्ति) वा कर्म को अपनाता है वही दास वर्ण है। दास कोई जाति विशेष नहीं। विस्तृत वर्णन पृष्ठ २६, २७ पर देखें।

वेदज्ञान से शून्य यह कहते हैं कि भारत के आदिवासी लोगों को बाहर से आये आर्य जाति के लोगों ने दास बनाया। यह सब निरा-धार है।

भृत्य अर्थ में दास पद का प्रयोग

(क) वैदिक इण्डेक्स (वैदिक-कोष) में लिखा है कि—कुछ विशेष दास नौकर के रूप में रख लिये गये थे। इसलिये दास शब्द ऋग्वेद में ही कई स्थलों पर इस अर्थ में आया है।

(ख) आदिवासियों की स्त्रियों को दासी के रूप में इस लिये भी कार्य करना पड़ता होगा कि उनके पति युद्ध में मारे जाते रहे होंगे। (देखो 'दास' शब्द)

वैदिक इण्डेक्स के लेखक मैक्डोनल और कीथ ने ऋग्वेद में सब स्थलों पर 'दसु उपक्षये' धातु से ही बना 'दास' माना है। उनकी अज्ञानता अथवा पक्षपात का निवारण करने के लिए वेद मन्त्रों से ही सिद्ध होता है कि—'दास' शब्द को सिद्ध करने लिये 'दासृ दाने' धातु भ्वादिगण में पढ़ा गया है। यह उभयपदी है—'दासति दासते वा' लट् लकार में इसका रूप बनता है। 'दास' शब्द का अर्थ होगा—जो अपने स्वामी की सेवा द्वारा सुख देता है। सम्प्रदान में 'घञ्' प्रत्यय से निष्पन्न 'दास' शब्द का अर्थ है—'दास्यते अस्मै इति दासः।' जिसे सेवा के प्रतिफल में अन्न, धन, वस्त्रादि दिया जाता है वह दास है। नीचे कुछ मन्त्र उद्धृत किये जाते हैं, जिनमें दासृ दाने धातु से निष्पन्न 'दास' शब्द का प्रयोग मिलता है—

अरं दासो न मीळ्हुषे । ऋक् ७।८६।७ ॥

उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
ऋक् १।९२।८ ॥

उत दासा परिविषे । ऋक् १०।६२।१० ॥

पाश्चात्य लेखकों का—'आदिवासियों की स्त्रियों को दासी के रूप में रख लिया जाता था'—यह लिखना भी भ्रान्ति-पूर्ण है। यहां पर भी 'दासृ दाने' धातु से स्त्रीलिंग में ङीप् प्रत्यय लगकर 'दासी' शब्द सिद्ध होता है। जिसका अर्थ है—भृत्या, सेविका, नौकरानी आदि ।

इस प्रकार 'दास' और 'दासी' शब्दों का सब स्थानों पर घातक अर्थ करना अपनी वेद के सम्बन्ध में अज्ञानता को प्रकट करना है।

ऋग्वेद में दस्यु पद

दस्यवः

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवः । ऋक् १।५१।८ ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' पद आर्य के विलोम अर्थ में आया है। अर्थात् अनार्य पुरुष ।

दस्यवि[1]

वज्रं जघन्थ दस्यवि । ऋक् ८।६।१४ ॥

यहां पर 'दस्यु' पद शुष्ण नामक मेघ के विशेषण में आया है, इसका अर्थ है—उपक्षयकारी ।

दस्यवे

दस्यवे सहः । ऋक् १।३६।१८ ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' पद नववास्तव के विशेषण में आया है। नववास्तव मेघ का नाम है—वास्तूनां समूहः वास्तवः, नवः

---

१. दस्यवि—दस्यु शब्द का सप्तमी का एकवचन का रूप है। यहां 'घेर्ङिति' (७।३।१११) से प्राप्त गुण का बाधक 'औदच्च घेः' (७।३।११८) का कार्य 'छन्दसि सर्वे विधयो विकल्प्यन्ते' नियम से नहीं होता। औत् और अत् कार्य का प्रतिषेध हो जाने पर गुण और अवादेश होकर 'दस्यवि' प्रयोग बनता है।

वास्त्व: यस्य। जिसका नया आश्रय समूह है। यहाँ भी दस्यु का अर्थ विनाशकारी है।

त्रिद्वान्वंज्रिन्दस्यवे हेतिमस्य । ऋक् १।१०३।३ ॥

यहां भी 'दस्यु' शब्द का अर्थ है—अनार्य, अर्थात् हानि पहुंचाने वाला।

न यो रर आर्यं नाम दस्यवे । ऋक् १०।४९।३ ॥

इस मन्त्र में आर्य के विलोमार्थ में 'दस्यु' पद अनार्य का बोधक है। इस मन्त्र में आर्य और दस्यु पद जातिवाचक नहीं, परन्तु गुणवाचक स्पष्ट प्रतीत होते हैं।

वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे । ऋक् १०।१०५।७ ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' का अर्थ है—उपक्षयकारी।

दस्युः

नि संव्यतः सादि दस्युरिन्द्र । ऋक् २।११।१८ ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' का अर्थ है—विनाशकारी।

नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त । ऋक् ४।१६।९ ॥

यहां पर छली-कपटी को 'दस्यु' कहा गया है। यहां भी 'दस्यु' का अर्थ है—हानि पहुंचाने वाला।

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।

ऋक् १०।२२।८ ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' पुरुष के लक्षणों का वर्णन है। जो शुभ कर्म हीन, अज्ञानी, मानुष व्यवहार-शून्य है, वह दस्यु है।

दस्युभ्यः

अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे ।

ऋक् १०।४८।२ ॥

यहां पर भी 'दस्यु' का अर्थ है—विनाशकारी ।

दस्युम्

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन । ऋक् १।३३।४ ॥

यहां पर 'दस्यु' का अर्थ है—विनाशकारी ।

अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा । ऋक् १।३३।७ ॥

यहां पर 'दस्यु' का अर्थ है—क्षयकारी ।

इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिः । ऋक् १।५३।४ ॥

इस मन्त्र में भी 'दस्यु' का अर्थ है—उपक्षयकारी ।

वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वान् । ऋक् १।५९।६ ॥

यहां पर 'दस्यु' शब्द का अर्थ है—विनाशकारी । यास्काचार्य ने इस मन्त्र की व्याख्या निरुक्त ७।२३ में इसे मेघ माना है और दस्यु का अर्थ क्षयकारी मेघ किया है ।

अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ।

ऋक् १।११७।२१ ॥

यहां पर 'दस्यु' का अर्थ है—उपक्षयकारी ।

सुहा॒वान्दस्युं॑मव्र॒तमो॑ष॒ः । ऋक् १।१७५।३ ॥

यहां पर 'दस्यु' पद का विशेषण 'अव्रतम्' है। दस्यु का अर्थ है—हानि पहुंचाने वाला।

ज॒घन्थ॒ दस्यु॒ं प्र द॒भीति॑माव॒ः । ऋक् २।१५।६ ॥

यहां 'दस्यु' पद चुमुरि और धुनि नामक मेघों के विशेषण में आया है। चुमुरि वह मेघ है जो स्वयं पानी को अपने में लीन कर लेता है और प्रजा के लिये नहीं छोड़ता। धुनि कांपने वाले मेघ को कहते हैं। निरुक्त १०।३२ में यास्काचार्य ने लिखा है—धुनिमन्तरिक्षे मेवम्।

व॒धेन॒ दस्यु॒ं प्र हि चा॒तय॑स्व । ऋक् ५।४।६ ॥

इस मन्त्र में वज्र से उपक्षयकारी दस्यु के नाश करने का वर्णन है।

अ॒थोप॒ प्रैद्यु॒धये॒ दस्यु॒मिन्द्र॑ः । ऋक् ५।३०।९ ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' का अर्थ क्षयकारी है। यहां इस प्रकरण में नमुचि नामक मेघ का विशेषण है। नमुचि वह मेघ है जो जल नहीं छोड़ता।

तू॒र्वन्तो॒ दस्यु॑मा॒यव॑ः । ऋक् ६।१४।३ ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' अर्थात् हिंसक को नाश करने का वर्णन है।

त्वं नि दस्यु॑ं चुमु॑रिं॒ धुनि॑ं । ऋक् ७।१९।४ ॥

इसमें 'दस्यु' का अर्थ विनाशकारी है और चुमुरि और धुनि नामक मेघों का विशेषण है।

सुष्णाय दस्युं पर्वतः । ऋक् ८।७०।११ ।।

इस मन्त्र में 'दस्यु' उसे कहा गया है जो मानुष व्यवहार शून्य और अदेवयुः अर्थात् पापी है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि वेद में दस्यु कोई जाति अभिप्रेत नहीं है।

साह्वांसो दस्युमव्रतम् । ऋक् ६।४१।२ ।।

इस मन्त्र में उपक्षकारी दस्यु का विशेषण अव्रत है।

आभिर्हि माया उप दस्युमागात् । ऋक् १०।७३।५ ।।

इस मन्त्र में 'दस्यु' का अर्थ है—उपक्षयकारी।

दस्यून्

दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् । ऋक् १।६३।४ ।।

इस मन्त्र में भी 'दस्यु' का अर्थ है—उपक्षयकारी।

तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे ।

ऋक् १।७८।४ ।।

इस मन्त्र में कहा हैं कि वृत्रहन् इन्द्र दस्युओं अर्थात् उपक्षयकारियों का नाश करता है।

दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा । ऋक् १।१००।१८ ।।

इस मन्त्र में उपक्षयकारी मेघों को दस्यु कहा गया है, और स्वव्यापार से उपरत शान्त (मूक) मेघों को शिम्यु कहा गया है, इन मेघों का इन्द्र वज्र से हनन करता है।

इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरत् । ऋक् १।१०१।५ ।।

यहां भी 'दस्यु' का अर्थ उपक्षयकारी है और इन्द्र इनका नाशक है।

शिश्राः स्पृत्र आर्येण दस्यून्। ऋक् २।११।१९ ॥

इस मन्त्र में भी 'दस्यु' का अर्थ उपक्षयकारी है।

अरज्ञो दस्यून्त्समुनब्दुभीतये। ऋक् २।१३।९ ॥

इस मन्त्र में इन्द्र द्वारा उपक्षयकारियों, दस्युओं का नाश करना लिखा है।

हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नि तारीत्।

ऋक् २।२०।८॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' का अर्थ विनाशकारी है और इन्द्र उन विनाशकारी दस्युओं के पुरों को अर्थात् मेघों की दृढ़ घटाओं को तोड़ता है।

येन देवासो असहन्त दस्यून्। ऋक् ३।२९।९ ॥

इस मन्त्र में श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा दस्यु अर्थात् विनाशकारी पुरुषों के नाश का वर्णन है।

मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः। ऋक् ३।३४।६ ॥

यहां पर भी दस्यु का अर्थ विनाशकारी है।

हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत्। ऋक् ३।३४।९ ॥

इस मन्त्र में हानि पहुंचाने वाले पुरुष को 'दस्यु' कहा गया है, और इन्द्र अर्थात् परमात्मा आर्य वर्ण अर्थात् श्रेष्ठ भाव वाले पुरुषों की रक्षा करता है। यहां वर्ण का अर्थ जाति

नहीं है, प्रत्युत आर्य-भाव है। आर्यं भावं कर्म वा वृणोति इति आर्यवर्णः।

उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष। ऋक् १।१७९।६॥

इस मन्त्र में हृदय के दो प्रकार के भाव अर्थात् वृत्तियों को वर्ण कहा गया है। इसीलिये यहां वर्ण अर्थ का भाव या वृत्ति होगा, जाति नहीं।

सद्यो दस्यून् प्र मृण। ऋक् ४।१६।१२॥

इस मन्त्र में भी 'दस्यु' का अर्थ उपक्षयकारी है और यह शुष्ण नामक मेघ के विशेषण में आया है। शुष्ण वह मेघ है जो न बरस कर ओषधियों और प्राणियों का शोषण करता है।

पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके। ऋक् ४।२८।३॥

यहां पर भी 'दस्यु' का अर्थ उपक्षयकारी है।

दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः। ऋक् ४।२८।४॥

इसमें 'दस्यु' का अर्थ उपक्षयकारी है।

आदग्ने अपृणतोऽत्रिः सासह्याद्दस्यूनिषः सासह्यान्नॄन्।
ऋक् ५।७।१०॥

इसमें भी 'दस्यु' का अर्थ विनाशकारी है।

घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः। ऋक् ५।१४।४॥

इस मन्त्र में कहा गया है कि अग्नि हानिकारक दस्यु अर्थात् कीटाणुओं को नष्ट करता है।

अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः ।
ऋक् ५।२९।१० ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' का अर्थ है—क्षयकारी। यहां अनासः और मृध्रवाचः दो प्रकार के मेघ दस्यु पद के विशेषण में आये हैं। अनासाः वे मेघ हैं जो शब्द नहीं करते और मृध्रवाचः वे मेघ हैं जो गरजते हैं, ।

अभ्यवर्तन्त दस्यून् । ऋक् ५।३१।५ ॥

यहां पर भी 'दस्यू' का अर्थ उपक्षयकारी है।

अपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः । ऋक् ५।३१।७ ॥

इस मन्त्र में 'अहि' और 'शुष्ण' दो प्रकार के मेघों का दस्यु कहा गया है। यहां भी 'दस्यु' का अर्थ है—विनाशकारी।

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः । ऋक् ६।१८।३ ॥

यहां भी 'दस्यु' का अर्थ विनाशकारी है।

शर्धत इन्द्र दस्यून् । ऋक् ६।२३।२ ॥

यहां भी 'दस्यु' का अर्थ विनाशकारी है।

पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् । ऋक् २।२९।६ ॥

यहां पर 'दस्यु' का अर्थ उपक्षयकारी है और मेघ के हनन प्रकरण में आया है।

त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज । ऋक् ७।५।६ ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' का अर्थ है कर्महीन। आर्य के विलोम में प्रयुक्त हुआ है।

अप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय । ऋक् ७।६।३ ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' पुरुष के लक्षण बताये हैं। दस्यु उसे कहा गया है जो यज्ञहीन, वाचाल, कठोर भाषी, अश्रद्धालु और जो कुसीद अर्थात् व्याज से अपना निर्वाह करते हैं, अथवा जो दुष्ट व्यापारी हैं।

अव दस्यूँरधूनुथाः । ऋक् ८।१४।१४ ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' का अर्थ है—विनाशकारी। यह नमुचि नामक मेघ के प्रकरण में आया है।

शूरो निर्युधाधमद्दस्यून् । ऋक् १०।५५।८ ॥

यहां भी 'दस्यु' का अर्थ विनाशकारी मेघ है।

हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः । ऋक् १०।८३।६ ॥

इस मन्त्र में हानि पहुंचाने वाले शत्रु को 'दस्यु' कहा गया है।

हन्ति दस्यून् । ऋक् १०।९९।८ ॥

यहां पर भी 'दस्यु' का अर्थ उपक्षयकारी है, और मेघ के प्रकरण में आया है।

दस्योः

दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।

ऋक् १।१०४।५ ॥

यहाँ भी 'दस्यु' शब्द कुयव नामक मेघ के प्रकरण में आया है—यहां भी इसका अर्थ है—हानिकर।

भिनत्ता दस्योरशिवस्य माया। ऋक् १।११७।३ ॥

इस मन्त्र में 'दस्यु' का विशेषण है अशिव अर्थात् कल्याण न करने वाला, और यह हानि पहुंचाने वाले के लिये आया है।

यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः। ऋक् २।१२।१० ॥

यहां भी 'दस्यु' का अर्थ है—उपक्षयकारी।

अमिनादायुर्दस्योः। ऋक् ३।४९।२ ॥

यहां भी 'दस्यु' का अर्थ उपक्षयकारी है।

त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः ॥
ऋक् ६।३१।४ ॥

यहां भी 'दस्यु' का अर्थ है—उपक्षयकारी और यह शम्बर नामक मेघ के विशेषण में आया है।

हन्ता विश्वस्यासि सोम दस्योः। ऋक् ९।८८।४ ॥

यहां पर भी 'दस्यु' का अर्थ उपक्षयकारी है।

इस प्रकार दस्युपद-घटित मन्त्रों पर विचार करने से अनायास ही प्रतीत होता है कि वेद में दस्यु पद किसी जाति विशेष के लिये प्रयुक्त नहीं हुआ है। इसका प्रायः प्रयोग मेघ के प्रकरण में आया है, और प्रायः अनास मृध्रवाचः नमुचिः

शम्बर शुष्ण आदि विविध प्रकार के मेघों के साथ या विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है। 'दस्यु' शब्द का सामान्य अर्थ क्षीण करने वाला, दुःख देने वाला अथवा हानिकारक है। मेघ के प्रकरण से अन्यत्र जहां मनुष्यों के लिये प्रयोग में आया है वहां भी इसका सामान्य अर्थ हानि पहुंचाने वाला, क्षीण करने वाला अथवा दुःख देने वाला ही है।

आदिवासियों का स्वरूप और धर्म

तथा

उसकी समीक्षा

चपटी नाक वाले आदिवासी

पाश्चात्य मत—वैदिक इण्डैक्स (वैदिक कोष) वालों ने लिखा है कि [दासों को] ऋक् ५।२९।१० में अनास कहा है, जिससे पता चलता है कि वे वस्तुतः मनुष्य थे। इस व्याख्या से चपटी नाक वाले द्राविड़ आदिवासियों को लिया जा सकता है। ऋक् ५।२९।१० मन्त्र में ही **मृध्रवाच्** भी कहा गया है। इसका अर्थ है—द्वेष पूर्ण वाणी वाले। मृध्रवाच् से दूसरा अर्थ लिया गया है—लड़ाई के बोल बोलने वाले।

यह वाक्य हमने मैक्डौनल और कीथ द्वारा रचित वैदिक इण्डैक्स (वैदिक कोष) पुस्तक मे उद्धृत किए हैं।

समीक्षा

अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः।

ऋक् ५।२९।१०॥

अर्थ—हे इन्द्र, तूने 'अनास्' अर्थात् (मूक मेघ) और 'मृध्रवाच्' (हिंसित गर्जना करने वाले मेघ) दस्यु अर्थात् विनाशकारी मेघों को संग्राम में वज्र द्वारा मारा।

इस सूक्त का देवता इन्द्र है। इस सूक्त में भी इन्द्र (विद्युत्) और मेघ का प्राकृतिक संघर्ष दर्शाया गया है। इसी सूक्त के ६वें तथा ११वें मन्त्र में 'शुष्ण' और 'पिप्रु' नामक मेघों का विदारण करना भी लिखा हुआ है।

अनास और मृध्रवाच के अर्थ—इस मन्त्र में 'नास्' का अर्थ नासिका नहीं, प्रत्युत 'नास्' का अर्थ है शब्द करना। णासृ शब्दे भ्वादि गण की धातु से 'नासते शब्दं करोति इति नाः (नास्)'—अर्थात् जो शब्द करता है वह 'नास्' है। 'न शब्दं करोति इति अनाः (अनास्)।' अर्थात् जो मेघ शब्द नहीं करते वे 'अनास्' अर्थात् 'मूकमेघ'।

विशेष—मन्त्र में 'अनासः' पद 'दस्यून्' का विशेषण है और 'ना' उदात्त है। यदि इसका अर्थ 'न विद्यते नासिका यस्य' बहुव्रीहि समास करके 'चपटी नाक वाले' अर्थ किया जाय तो '**अञ्नासिकायाः नसं चास्थूलात्**' (अ० ५।४।११८) के नियम से 'नस्' आदेश और 'अच्' प्रत्यय होकर **अनसः** अकारान्त **अनस** शब्द बनेगा। उसका द्वितीया के बहुवचन का रूप **अनसान्** होगा, न कि मन्त्र-पठित **अनासः**। इतना ही नहीं, यदि समासान्त 'अच्' प्रत्यय के अभाव की कल्पना कर लें तो भी द्वितीया के बहुवचन में **अनसः** रूप होगा न कि **अनासः**।

इससे स्पष्ट है कि पाश्चात्य लेखकों ने अपने पक्ष की सिद्धि के लिये व्याकरण शास्त्र विरुद्ध कितनी भ्रान्त कल्पनायें की हैं। **णासृ शब्दे** धातु से ऋजुमार्ग से **अनासः** पद द्वितीया के बहुवचन में उपपन्न हो जाता है। इसमें किसी प्रकार की कल्पना नहीं करनी पड़ती और प्रकरण भी संगत हो जाता है।

मृध्रवाचः—मृध्रवाच् का अर्थ है—हिंसित शब्द (घोर

गर्जना) करने वाले मेघ, अर्थात् जो घनघोर गर्जना तो करते हैं परन्तु बरसते नहीं। ऋग्वेद ५।३२।८ में मृध्रवाच् शब्द मेघ के विशेषण में आया है—**अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचम्**। विविच्यमान (५।२९।१०) मन्त्र में 'अनास्' और 'मृध्रवाच्' दोनों पद 'दस्यु' पद के विशेषण हैं। 'दस्यु' का अर्थ है—विनाशकारी मेघ। जो गर्जना रहित अथवा वृथा गर्जना करने वाले, जल न बरसा कर संसार को नाश करने हारे हैं, वे 'दस्यु' हैं। इस प्रकार के मेघों को 'चपटी नाक वाले' तथा 'लड़ाई के बोल बोलने वाले' आदिवासी मनुष्य थे, ऐसा लिखना अज्ञानता अथवा पक्षपात सिद्ध करता है।

टिप्पणी—वेद में 'दस्यु' मेघ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसके लिए नीचे वेद का ही प्रमाण प्रस्तुत किया जाता है—

वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत्।

ऋक् १।५९।६ ॥

इसी मन्त्र की व्याख्या में निरुक्त ७।२३ में यास्काचार्य ने भी दस्यु को उपक्षयकारी मेघ लिखा है।

मन्त्र में पठित काष्ठा शब्द जल का वाचक है। निरुक्तकार यास्क ने ऋग्वेद १।३२।१० की व्याख्या में लिखा है—**आपो हि काष्ठा उच्यन्ते** (२।१६)।

जिस प्रकार अनास् और मृध्रवाच् पदों से मूक और वृथा गर्जने वाले मेघों का ५।२९।१० मन्त्र में ग्रहण किया गया है, उसी प्रकार वेद के १।१००।१८ मन्त्र में दस्यु और शिम्यु मेघों का वर्णन आया है। दस्यु वह मेघ है जो विनाशकारी और प्रलयकारी है और शिम्यु वे मेघ हैं जो शान्त रूप से अपने वृष्टि व्यापार में निरत रहते हैं। शिमि शब्द निघण्टु २।१ में कर्म नामों में पढ़ा गया है। मन्त्र इस प्रकार है—

दस्यूञ्छिम्यूंश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।

मन्त्रार्थ—दस्यु और शिम्यु मेघों को (पृथिव्यां) अन्तरिक्ष में (पुरुहूत) इन्द्र ने (शर्वा) वज्र से (नि बर्हीत्) हनन किया । पृथिवी पद निघण्टु १।३ में अन्तरिक्ष नामों में पढ़ा गया है ।

कृष्ण वर्ण के आदिवासी

पाश्चात्य मत—वज्रपाणि इन्द्र को जो कि युद्ध में अन्तरिक्षस्थ दानवों को छिन्न-भिन्न करते हैं, योद्धा लोग अनवरत आमन्त्रित करते हैं । युद्ध के प्रमुख देवता होने के नाते उन्हें भौम शत्रुओं के साथ युद्ध करने वाले आर्यों के सहायक के रूप में और सभी देवताओं की अपेक्षा कहीं अधिक बार आमन्त्रित किया गया है । वे आर्य वर्ण के रखवाले और काले वर्ण के उपदस्ता हैं । उन्होंने ५० हजार कृष्ण-वर्णों का अपाकरण किया और उनके दुर्गों को छेद-भेद डाला । उन्होंने दस्युओं को आर्यों के सम्मुख झुकाया और आर्यों को उन्होंने भूमि दी । सप्त सिन्धु में वे दस्यु के शस्त्रों को आर्यों के सम्मुख पराभूत करते हैं । (वैदिक माईथौलोजी) वैदिक देवशास्त्र पृ० सं० १५१, १५२ ।

इन्द्र के द्वारा दासों या दस्युओं पर पाई विजय के आंशिक संकेत जहां-तहां मिलते हैं । **मौलिक** रूप में तो यह लोग मानवीय शत्रु हैं, जिनका **रंग काला** है, जो **अनास हैं**, **अदेव** तथा **अयज्वा** हैं । यद्यपि इन्द्र के द्वारा पाई गई व्यक्तिगत दस्यु विजय के वर्णनों में गाथात्मक तत्त्व घुल मिलकर अस्पष्ट से हो गये हैं, तथापि इन गाथाओं का आधार पार्थिव एवं मानवीय है । क्योंकि जहां एक ओर वृत्र का वध मनुष्य सामान्य के हितार्थ दिखाया गया है, वहां जिनके लिये या जिनके साथ

इन्द्र ने दास या दासों को पराभूत किया, वे खुले मानव व्यक्ति हैं। देखो—वैदिक देवशास्त्र पृ० १५५ १५६।

मैकडौनल ने लिखा है—The term Das, Dasyu properly the name of the dark aborigires." "दास दस्यु काले रङ्ग के आदिवासी ही हैं।"

ग्रिफथ ने ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद करते हुए मन्त्र १।१०।१ की टिप्पणी में लिखा है—

The dusky brood : The dark aborigines who opposed the Aryans.

"काले वर्ण के आदिवासी जो आर्यों का विरोध करते थे।"

पाश्चात्य मत वालों ने ६ मन्त्रों के द्वारा यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि भारत के आदिवासियों की त्वचा कृष्ण थी। वे मन्त्र ये हैं—

यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना। १।१०१।१ ॥

त्वचं कृष्णामरन्धयत्। १।१३०।८ ॥

स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः। २।२०।७ ॥

पञ्चाशत् कृष्णा नि वपः। ४।१६।१३ ॥

कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः। ६।४७।२१ ॥

त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीः। ७।५।३ ॥

समीक्षा

पाश्चात्य मत वालों ने इन मन्त्रों से यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि आदिवासी काली त्वचा वाले थे। उनकी यह कल्पना निराधार है, क्योंकि ये मन्त्र मनुष्य सम्बन्धी हैं ही नहीं।

प्रथम मन्त्र १।१०१।१ में जो कृष्णगर्भाः[1] पद आया है, वह **मेघ की काली घटा** सम्बन्धी है। इसका अर्थ है—**कृष्ण वर्णो मेघो गर्भे यासु घटासु ताः** कृष्णगर्भाः। इसी सूक्त के दूसरे मन्त्र में ही शुष्ण और शम्बर नामक मेघों का वर्णन है। अतः यह सारा प्रकरण मेघों का है। अतः कृष्ण वर्ण मेघ जिन घटाओं के गर्भ में हैं, वे घटायें ही यहां कृष्णगर्भा कही गई हैं। कृष्ण शब्द को देख कर कृष्ण वर्ण के आदिवासी थे, यह कपोल कल्पना नहीं तो और क्या है? ऋक् ७।१७।१४ में कृष्ण का अर्थ सायणाचार्य ने भी **कृष्णवर्णो मेघः** किया है।

दूसरा मन्त्र—**त्वचं कृष्णामरन्धयत्**। ऋक् १।१३०।८ इस का अर्थ किया गया है—'कृष्ण त्वचा वाले असुरों' को मार कर।

यहां भी कृष्ण त्वचा वाला कोई आदिवासी नहीं है। यहां इन्द्र का कृष्ण वर्ण मेघ के साथ युद्ध है। इससे पूर्व के (संख्या ७ के) मन्त्र में जो प्रकरण चल रहा है, उसमें शम्बर नामक मेघ का वर्णन है, जिसके ९९ पुर अर्थात् घटाओं को इन्द्र तोड़ता है। इसी (८वें) मन्त्र में 'अर्शसान' तथा 'ततृषाण' दो प्रकार के मेघों का ही वर्णन है। इस प्रकार इन्द्र कृष्ण वर्ण मेघों को हिंसित करता है। इसलिये जान-बूझ कर अथवा अज्ञान से यह लिख देना कि 'यहां कृष्ण वर्ण आदिवासियों का वर्णन है' सर्वथा निराधार है। इस मन्त्र की व्याख्या में वेंकट माधव ने '**त्वचं कृष्णां**' का अर्थ किया—मेघं वशमनयत्।

---

१. **स्कन्दभाष्यम्**—वृष्टिलक्षणा आपः कृष्णगर्भाः कृष्णवर्णस्य मेघस्य गर्भभूतत्वात्।

तृतीय मन्त्र—२।२०।७ में **कृष्णयोनी:** पद को देखकर पाश्चात्य मत वालों को भ्रान्ति हुई है। इस मन्त्र में भी कृष्ण-योनी: पद 'दासी'[1] का विशेषण है। यहां पर 'दासी:' का अर्थ है—मेघ की विनाशकारी घटायें। "कृष्णा: (कृष्णवर्णा:मेघा:) योनीरासां ता: कृष्णयोन्य: दास्य:" अर्थात् कृष्णवर्ण मेघ जिन घटाओं का उत्पत्ति स्थान है वे घटायें 'कृष्णयोनी:'[2] कहलाती हैं। इस मन्त्र में इन्द्र का विशेषण **वृत्रहा** और **पुरन्दर:** हैं, जिनका अर्थ है—'इन्द्र वृत्र नामक मेघ का हनन करता है' और 'मेघों के जो पुर=घटायें हैं उनका विदारण करने वाला है।' यह मन्त्र भी मेघ-सम्बन्धी है, पुरुष सम्बन्धी नहीं।

चतुर्थ मन्त्र—

पञ्चाशत्कृष्णा नि वप: सहस्रात्कं न पुरो जरिमा विदर्द:।
ऋक् ४।१६।१३ ॥

इसका अर्थ किया गया है—'हे इन्द्र ! तुमने ५० हजार कृष्णवर्ण राक्षसों को मारा था।'

ग्रिफथ ने इसी मन्त्र की टिप्पणी में लिखा है कि---

"The swarthy fifty thousand : black Rakshasas, fiends or hostile aborigines."

इस मन्त्र में भी इन्द्र और मेघ के युद्ध का वर्णन है। इसी मन्त्र में **'पिप्रु'** तथा **'मृगय'** नाम वाले मेघों का वर्णन है, जिन्हें इन्द्र अपने वज्र से फाड़ता है। ५० हजार कृष्णवर्ण के राक्षस आदिवासी नहीं हैं, प्रत्युत ये भी कृष्ण

---

१. **सायण**—दासी उपक्षयितृरासुरी: सेना:।

२. **वेङ्कट**—कृष्णासुरो यासां योनिषु ता:।

वर्ण के मेघ ही हैं। ५० हजार शब्द तो कोई गणना की दृष्टि से नहीं दिए गये, प्रत्युत लोक भाषा में भी जैसे किसी को दो-चार बार बुलाने पर भी कहा जाता है कि 'हजारों आवाजें देने पर भी तुम बोले नहीं' इसी प्रकार ५० हजार का अर्थ है अनेक। कृष्ण वर्ण के मेघों की घटाओं का इन्द्र अर्थात् वायु आवेष्टित विद्युत् ने विदारण किया।

पाश्चात्य पक्ष वालों ने कृष्ण वर्ण के आदिवासी सिद्ध करने के लिए पांचवां मन्त्र उपस्थित किया है—

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्द्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः।

ऋक् ६।४७।२१॥

इसका अर्थ है—इन्द्र अर्थात् सूर्य दिन का अपराध प्रकाशित करने के लिए प्रतिदिन समान रीति से रात्रि[1] को दूर करता है। यहां कृष्णा का अर्थ है अंधेरी रात्रि।

इस पर ग्रिफथ ने इस मन्त्र के अंग्रेजी अनुवाद की टिप्पणी में इस प्रकार लिखा है—

Indra is represented as having put to flight the dark aborigines and slain the riggardly demons or savages Varcin and Sambara.

अन्तिम छठा मन्त्र है—

त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः॥

ऋक् ७।५।३॥

यहां पर 'असिक्नी' पद को 'विशः' का विशेषण देख कर पाश्चात्य मान्यता वालों ने अर्थ किया है कि—'असितवर्ण'

---

१. कृष्णाः कृष्णवर्णा रात्रीः।

अर्थात् काले रंग की प्रजा। इसी मन्त्र की टिप्पणी में अपने अंग्रेजी अनुवाद में—The dark-hued races. अर्थात् काले रंग की जातियां—यह अर्थ ग्रिफथ ने किया है। इसमें यह सिद्ध करने का यत्न किया गया है कि आदिवासी कृष्ण वर्ण के थे।

पाश्चात्य मान्यता वालों की यह कल्पना भी निराधार है, क्योंकि यास्कनिर्मित निघण्टु १।७ में **'असिक्नी'** को रात्रि-नामों में पढ़ा गया है। 'असिक्नी' अंधेरी रात को कहते हैं।

'असिक्नी विशः' का यह अर्थ है—अंधेरी रात में कष्ट देने वाले जीव-जन्तु। इस मन्त्र का देवता **वैश्वानर** है, जिसका अर्थ है 'अग्नि'। अर्थात् अग्नि के प्रदीप्त होने पर अंधेरी रात वाले भयंकर जोव-जन्तु भाग जाते हैं। यहां पर आदिवासियों का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है।

इन ऊपर के उद्धरणों में हमने सिद्ध किया है कि मन्त्र—१।१०१।१; २।२०।७; १।१३०।८; ४।१६।१३ में कृष्ण वर्ण का काले मेघों के साथ सम्बन्ध है और ६।४७।२१ तथा ७।५।३ इन दो मन्त्रों में कृष्णा और असिक्नी ये दो पद अंधेरी रात्रि के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। इस प्रकार प्राकृत पदार्थों के स्थान पर 'भारतीय आदिवासी कृष्ण वर्ण के थे' इस मत की कल्पना से पाश्चात्य मान्यता वालों की अज्ञता सिद्ध होती है।

शिश्नदेव (=लिङ्ग-पूजक) आदिवासी

पाश्चात्य मत—वैदिक इण्डैक्स के लेखकों ने लिखा है कि—

'सम्भवतः लिङ्ग-पूजक भी इन्हीं को कहा गया है—ऋग्वेद ७।२१।५; १०।९९।३॥ यह ध्यान देने योग्य है कि आर्यों और

दासों या दस्युओं के धर्म के अन्तर पर बल दिया गया है। (देखो दास तथा दस्यु शब्द)।

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने कुछ मत अपनी पुस्तक में और भी दिये हैं, जिससे यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि दस्यु—दास (आदिवासियों) को वेद में **अकर्मन्, अदेवयुः, अब्रह्मन्, अयज्वन्, अयज्युः, अव्रतः, अन्यव्रतः** आदि आदि लिखा गया है। वह सिद्ध करते हैं कि आदिवासी कर्म-हीन तथा यज्ञ-विरोधी थे।

समीक्षा

पाश्चात्य मान्यता वालों की यह धारणा भी निराधार है—**शिश्नदेवाः** पद को लेकर इन्होंने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि आदिवासी शिश्न अर्थात् लिङ्ग-पूजक थे। इनका यह अर्थ भ्रममूलक है। **शिश्नदेवाः** का अर्थ है—**शिश्नेन उपस्थेन्द्रियेण दीव्यन्ति क्रीडन्ति इति** शिश्नदेवाः, जो लिङ्ग इन्द्रिय से क्रीडा में रत हैं, इस प्रकार के व्यभिचारी कामी भोगी व्यक्ति को वेद में 'शिश्नदेवाः' कहा गया है। पांच सहस्र वर्ष पूर्व के वेद व्याख्याकार यास्काचार्य ने ७।२१।५ मन्त्र की व्याख्या में **शिश्नदेवाः** का अर्थ किया है—'**अब्रह्मचर्याः**'—

स उत्सहतां यो विषुणस्य जन्तोः विषमस्य मा शिश्नदेवा अब्रह्मचर्याः। निरुक्त ४।१६ ॥

वेद के ७।२१।५ तथा १०।९९।३ इन दो वेद-मन्त्रों में **शिश्नदेव** पद आया है। इन दोनों मन्त्रों में इन्द्र से यही प्रार्थना की गई है कि लोगों को पीड़ा पहुंचाने वाले, वञ्चक, कुटिल तथा शिश्नदेव=व्यभिचारी व्यक्ति हमारे यज्ञों को

प्राप्त न हों अर्थात् दुष्ट व्यक्तियों का हमारे धार्मिक कार्यों में प्रवेश न हो। मन्त्र इस प्रकार हैं—

न यातवं इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ।

ऋक् ७।२१।५ ॥

मन्त्रार्थ—हे इन्द्र ! (यातवः) प्रजा को पीड़ित करने वाले हमें हिंसित न करें। हे बलवत्तम इन्द्र ! वञ्चक, दुष्ट पुरुष हमें प्रजाओं से पृथक् न करें। इन्द्र (विषुण) विषम अर्थात् कुटिल जीव को शासन करने में समर्थ है। (शिश्न-देवाः) व्यभिचारी हमारे यज्ञों को प्राप्त न होने पावें।

दूसरा मन्त्र—

स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभिवर्पसा भूत् ।

ऋक् १०।९९।३ ॥

मन्त्रार्थ—अविचलित मार्गगामी, संग्राम की ओर प्रस्थान करने वाला, इन्द्र संग्राम में शत्रु-धनों को जीतने की इच्छा से (शिश्नदेवान्) व्यभिचारियों को हनन करता हुआ सौ द्वारों वाले शत्रु-पुरों में छिपे धन को बल से ले आता है।

ऋग्वेद के इन दो मन्त्रों में ही **शिश्नदेव** पद आया है। इन मन्त्रों में प्रकरण से **शिश्नदेव** का अर्थ व्यभिचारी व्यक्ति सिद्ध होता है। इस प्रकार सत्य अर्थों को छोड़कर मिथ्या अर्थ करना कि 'दस्यु लोग अर्थात् आदिवासी लिङ्ग-पूजक थे,' यह पक्षपात नहीं तो और क्या है ? यहां मन्त्रों में पूजा का प्रकरण

भी नहीं है। इस प्रकार भ्रम-मूलक अर्थ करके वेद की प्रतिष्ठा को न्यून करने का यत्न किया गया है।

वैदिक इण्डैक्स के लेखकों ने अपनी पुस्तक में यह भ्रान्ति उत्पन्न की है कि आर्य लोग आदिवासियों को दस्यु, अव्रत, अन्यव्रत, अयज्युः, अकर्मन् कहते थे। उनकी यह धारणा भी भ्रममूलक है। वास्तव में वेदों में जो भी व्यक्ति (दस्यु) विनाशकारी, (अव्रत) शुभ कर्म रहित, (अन्यव्रत) कुमार्ग की ओर ले जाने वाला, (अयज्यु) अयजनशील, (अकर्मन्) कर्महीन, (अमानुषः) मनुष्य व्यवहार-शून्य, (अदेवयुः) पापी, (अग्रथिनः) बकवादी (कुसीदी) सूदखोर दुष्ट व्यापारी आदि-आदि दुर्गुण युक्त है, उसे दस्यु कहा गया है। यहां पर किसी जाति के सम्बन्ध में ये विशेषण नहीं आये हैं। इस प्रकार के दुर्गुणों से युक्त जो भी व्यक्ति है चाहे वह किसी भी समुदाय का हो, उसे दस्यु कहा जाता है। पाश्चात्य मान्यता वालों ने इस प्रकार की झूठी और निरर्थक कल्पना करके सवर्ण हिन्दु और आदिवासियों में फूट डालने का बीजारोपण किया है। मन्त्र इस प्रकार है—

अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम् ।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ।

ऋक् ८।७०।११ ॥

मन्त्रार्थ—(अन्यव्रत) कुमार्गगामी, (अमानुष) मनुष्य व्यवहार शून्य, अयजनशील पापी, दास अर्थात् विनाशकारी व्यक्ति को इन्द्र का सखा (पर्वतः) वज्र से द्वारा सुख-स्थान से अवचालित करता है और ऐसे दस्यु (हिंसक) पुरुष को अच्छे प्रकार नष्ट करने के लिए (पर्वतः) अर्थात् पहाड़ से नीचे फेंकते हैं।

प्रथम पर्वत का अर्थ वज्र है, इसके लिये देखो ऋक् ७।१०४।१९—"जहि रक्षसः पर्वतेन"। दूसरा पर्वत शब्द गिरि के अर्थों में आया है।

न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान्।
प्रप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून्।

ऋक् ७।६।३ ॥

मन्त्रार्थ—यज्ञशून्य, बकवासी, कठोर भाषी, दुष्ट व्यापारी, कुसीद से जीवन व्यतीत करने वाले, अश्रद्धालु अयजनशील, हानि पहुंचाने वाले दस्यु पुरुषों को अग्नि=परमेश्वर दूर भगावे।

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।
त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय। ऋक् १०।२२।८ ॥

मन्त्रार्थ—हे इन्द्र! जो 'अकर्मा' अर्थात् शुभ कर्म रहित है, जो 'अमन्तु' अज्ञानी, कुछ नहीं मानता, 'अन्यव्रत' शास्त्रोक्त व्रतों से रहित तथा जो मनुष्य व्यवहार शून्य अर्थात् असुर प्रकृति पुरुष है, इस प्रकार के 'दस्यु' अर्थात् उपक्षयकारी दस्यु मनुष्य का आप हनन करें।

इस विवेचना से स्पष्ट है कि वेद में किन्हीं काले वर्ण वाले, चपटी नाक वाले, अकर्मा अन्यव्रत अयज्यु लिङ्ग-पूजक आदिवासियों का वर्णन नहीं है। यह तो पाश्चात्य विद्वानों ने राजनीतिक कारणों से भारतीय मूल निवासियों के समुदाय में फूट डालने के लिये मिथ्या कल्पना की है। पाश्चात्य मतानुयायियों ने जिन मन्त्रों को अपने मत के पोषण में उद्धृत किया है, उनसे उनकी कल्पनायें उपपन्न ही नहीं होती, यही दिखाना इस प्रकरण का उद्देश्य है।

आदिवासियों के विशिष्ट व्यक्ति
और
उनकी समीक्षा

पाश्चात्य एवं उनके अनुयायी विद्वानों के मतानुसार ऋग्वेद में निम्न शम्बर आदि प्रमुख आदिवासी व्यक्तियों का वर्णन मिलता है।

शम्बर

हिल्ले ब्राण्ड्ट का मत है कि—

(क) वह दिवोदास का शत्रु एक वास्तविक व्यक्ति था।

(ख) कुछ भी हो यह माना जा सकता है कि 'शंबर' भारत की आदिम जातियों का नेता था, और वह पर्वतों में रहता था।

चुमुरि

'चुमुरि' शब्द अनार्य भाषा का प्रतीत होता है और किसी आदिवासी का नाम हो सकता है।

धुनिः

संभवतः धुनि कोई आदिवासियों का सरदार है।

पिप्रुः

लुडविग, ओल्डेनबर्ग और हिल्ले ब्रांड्ट ने पिप्रु को मनुष्य माना है।

वर्चिन्

संभवतः आदिवासियों में से एक रहा हो।

इलीबिश

इलीबिश किसी दास या दैत्य का नाम है।

दासों को पर्वतों में शरण लेने वाला कहा गया है। प्रमुख दास थे—**इलिबश, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन, शम्बर**। (देखो 'दास' शब्द वैदिक इण्डैक्स में)।

वल, शुष्ण, नमुचि आदि दासों के अलावा और भी कुछ दास हैं, जिनका इन्द्र दमन करता है।

(देखो वैदिक माइथोलोजी—इन्द्र प्रकरण)

समीक्षा

मैकडानल और कीथ की यह कल्पना कि 'शम्बर, चुमुरि' आदि मनुष्य जाति के थे और ये आदिवासियों के प्रमुख व्यक्ति थे, सर्वथा निराधार है।

शम्बरादि

वेद में **शम्बर, चुमुरि, धुनिः, पिप्रुः, वर्चिन्** तथा **इलीबिश** आदि सब मेघों के भेद हैं। वेद-मन्त्रों में जहां-जहां ये पद आये हैं, वहां-वहां मनुष्यों का कोई सम्बन्ध नहीं। इन्द्र और शम्बरादि मेघों का जो युद्ध है वह आकाश में विद्युत् और मेघों का प्राकृतिक संघर्ष है। आदिवासी पुरुषों के साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। विक्रम संवत् से ३१ सौ वर्ष पूर्व उत्पन्न यास्काचार्य ने स्पष्ट लिखा है कि—**अपां ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति**। नि० २।१६॥

वेद के आन्तरिक स्वरूप को जानने वाले यास्काचार्य ने तो मन्त्र में प्राकृतिक युद्ध सिद्ध किया, परन्तु ज्ञानलवदुर्विदग्ध वेदाभिमानी, पाश्चात्य मान्यता वालों ने शम्बरादि शब्दों से किन्हीं आदिवासियों को सिद्ध करने की मिथ्या कल्पना की है।

अब हम उन मन्त्रों पर, जिनमें तथाकथित आदिवासी नेता शम्बर आदि के नाम आये हैं, विचार करते हैं—

(१) शम्बर

प्र नू म॑हि॒त्वं वृ॑ष॒भस्य॑ वोचं॒ यं पू॒रवो॑ वृत्र॒हणं॒ सच॑न्ते।
वै॒श्वा॒न॒रो दस्यु॑म॒ग्निर्ज॑घ॒न्वाँ अधू॑नो॒त् काष्ठा॒ अव॒ शम्ब॑रं भेत्।
ऋक् १।५९।६ ॥

मन्त्रार्थ—मनुष्य जिस वृत्रहन्ता वैश्वानर अग्नि की वर्षा के लिये प्रार्थना करते हैं, उसी वैश्वानर अग्नि के माहात्म्य को मैं कहता हूं। उसी वैश्वानर अग्नि ने दस्यु (अवर्षण द्वारा प्रजा का उत्पीडक मेघ) का हनन किया, जलों को कम्पित गतिशील किया और शम्बर मेघ के टकड़े कर दिये।

इस मन्त्र में वैश्वानर अग्नि मध्यमस्थानीय अन्तरिक्षस्थ (इन्द्र) विद्युत् का प्रकरण है। वह विद्युत् जब दस्यु अर्थात् अवर्षक विनाशकारी मेघ तथा शम्बर मेघ का हनन करती है तब जल प्रवाहित होते हैं। यास्काचार्य ने निरुक्त ७।२३ में इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है कि शम्बर मेघ है और उस शम्बर से जल प्रवाहित होते हैं—

तमग्निर्वैश्वानरो घ्नन् अवाधूनोदपः काष्ठाः, अभिनच्छम्बरं मेघम।

इस प्राकृतिक युद्ध का विस्तृत वर्णन आर्यों और दासों के युद्ध प्रकरण में देखें।

(२) चुमुरि

स यो न मुहे मिथू जनो भूत् सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित्॥

ऋक् ६।१८।८॥

अर्थ—जो इन्द्र संग्राम में कभी भी कर्तव्य-विमूढ़ नहीं होता है, जो कभी भी वृथा वस्तुओं को उत्पन्न नहीं करता; किन्तु जो प्रख्यात नाम वाला है, वही इन्द्र शत्रुओं के नगरों को विनष्ट करने के लिये और शत्रुओं को मारने के लिये शीघ्र ही कार्य रत होता है। हे इन्द्र! तुमने चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर और शुष्ण नामक (मेघों) को विनष्ट किया।

इस मन्त्र में चुमुरि एक मेघ का नाम है—धुनि, पिप्रु, शम्बर, शुष्ण नाम के भी मेघों के प्रकार हैं, जिन्हें इन्द्र अर्थात् विद्युत् अपनी वायु से आवेष्टित तरंगों द्वारा इन मेघों के **पुर** अर्थात् **घटाओं** को छिन्न-भिन्न करता है।

चुमुरि शब्द **चमु अदने** धातु से बनता है। चुमुरि वह मेघ है जो स्वयं जल को खा जाता है और प्रजा के लिये नहीं छोड़ता।

टिप्पणी—चुमुरि शब्द अनार्य भाषा का है, ऐसा वैदिक इण्डैक्स वालों ने लिखा है। इसके लिए उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। इससे उनकी अज्ञानता अथवा पक्षपात प्रतीत होता है।

(३) वर्चिन्

इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ।

ऋक् ७।९९।५ ॥

अर्थ—हे इन्द्र और विष्णु ! तुमने शम्बर की ९९ दृढ़ पुरियों को नष्ट किया है। तुमने वर्चिन् नाम के असुर (मेघ) के सौ और हजार वीरों को नष्ट किया है।

इस मन्त्र में वर्चिन् नाम वाला एक प्रकार का मेघ ही है। वर्च शब्द **वर्च दीप्तौ** धातु से बना है। जिस मेघ में विद्युत् बहुत चमकती है वह वर्चिन् मेघ है। शम्बर मेघ का भी इसी मन्त्र में वर्णन है। यहां वर्चिन् का विशेषण असुर है। निघण्टु १।१० में असुर शब्द मेघ नामों में पढ़ा गया है। इसी मन्त्र में शम्बर नामक मेघ की ९९ पुरियों अर्थात् घटाओं को इन्द्र और विष्णु नष्ट करते हैं, ऐसा कहा गया है। वर्चिन् मेघ की सहस्रों टुकड़ियां ही वर्चिन् मेघ के वीर हैं। यह सब आलंकारिक वर्णन है। इस मन्त्र में इन्द्र विद्युत् है और विष्णु सूर्य है। ये दोनों मिलकर मेघों को छिन्न-भिन्न करते हैं।

(४) इलीबिश

न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन् यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ।

ऋक् १।३३।१२ ॥

अर्थ—इलीबिश नामक मेघ के दृढ़ जलरोधक बन्धनों को इन्द्र नष्ट करता है। तदनन्तर उस मेघ के उन्नत शृंगों अर्थात्

उन्नत घटाओं को तोड़कर शोषण कर्ता मेघ का नाश करता है। हे इन्द्र ! तूने अपने वेग और ओज के आश्रय से वज्र द्वारा युद्धाकांक्षी शत्रु को मारा।

निरुक्त ६।१९ में इसी मन्त्र की व्याख्या में यास्काचार्य ने लिखा है—**निरविध्यदिलाबिलशयस्य दृढानि व्यभिनच्छृङ्गिणं शुष्णमिन्द्रः।** इलाबिल-शयः अर्थात् भूमि के बिलों में सोने वाला। जिस समय भूमि पर वृष्टि द्वारा जल आता है; तो भूमि में प्रवेश कर जाने से इसे इलिबिश कहते हैं। निघण्टु १।१ में इला पद पृथिवी नामों में पढ़ा गया है।

(५) पिप्रुः

वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः।
सुदामन् तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः।

ऋक् ६।२०।७ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! तूने सर्पाकार पिप्रु मेघ के दृढ़ पुरों को बल से विदारण किया और हे शोभनदाता इन्द्र ! तू ऋजिश्वा अर्थात् ऋज्वादिगुणवर्धक दानी पुरुष के लिये देने योग्य धन को देता है।

टिप्पणी—**ऋजवः सरलाः श्वानो वृद्धयो यस्मिन् स ऋजिश्वा। अत्र श्वन्शब्दः श्विधातोः कनिन्प्रत्ययान्तो निपातित उणादौ।**

इस मन्त्र में पढ़ा गया 'पिप्रु' भी एक प्रकार का मेघ है।

'पिप्रु' शब्द **पॄ पालनपूरणयोः** धातु से बनता है। जिसका अर्थ है—ऐसा 'मेघ' जो वर्षा द्वारा प्रजा का पालन करता है।

(६) धुनिः

तवे ह त्यदिंन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप्।

ऋक् ६।२०।१३ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! संग्राम में ये सब काम तुम्हारे ही हैं, जो तूने धुनि और चुमुरि नामक मेघों को सुलाया अर्थात् मारा।

धुनि भी एक प्रकार का मेघ ही है। निरुक्त १०।३२ में लिखा है—**धुनिरन्तरिक्षे मेघम्**। अर्थात् यह अन्तरिक्ष में एक प्रकार का 'मेघ' है। यह **धुञ् कम्पने** स्वादिगण की घातु से बना है—**धुनोति इति धुनिः** जो मेघ कांपता है।

पाश्चात्य मान्यता वालों ने '**शम्बर**', **चुमुरि**, **धुनि**, **वर्चिन्**, **इलीबिश** आदिकों को आदिवासी सिद्ध करने का जो यत्न किया है, इससे उनकी अज्ञानता अथवा पक्षपात सिद्ध होता है। यदि वेद, निरुक्त तथा व्याकरण का इन्हें ज्ञान होता तो; ऐसी भूल वे नहीं कर सकते थे। यदि उन्होंने आदिवासी और सवर्ण हिन्दुओं में फूट का बीजारोपण करने के लिये वेद का मिथ्या अर्थ किया है, तो इससे उनका पक्षपात सिद्ध होता है।

आर्यों, दासों तथा दस्युओं का युद्ध

पाश्चात्य मत—दासों के विरुद्ध आर्यों के युद्ध के साथ-साथ आर्यों के विरुद्ध भी आर्यों के युद्ध का संकेत मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्य लोग ऋग्वैदिक काल में ही मूल निवासियों की विजय से कहीं आगे निकल गए थे। बाद की संहिताओं और ब्राह्मणों में जिन युद्धों का विवरण मिलता है वे आर्यों के युद्ध जान पड़ते हैं जबकि निःसंदेह आर्य और दास शनैः शनैः एक जाति में घुलमिल रहे थे। (देखो वैदिक इण्डैक्स में आर्य शब्द)

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने वेद मन्त्रों के द्वारा यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि वैदिक काल में आर्यों और दासों (आदिवासियों) के भयंकर युद्ध हुआ करते थे। इसी आधार को लेकर आर्यों को बाहर से भारत में आने वाला और आदिवासी जैसे द्राविड़, कोल, भील और संथालों को यहां का मूल निवासी बताया है और यह भी सिद्ध किया है कि आर्यों ने युद्धों में दासों को पराजित करके भारत भूमि पर आधिपत्य स्थापित किया।

समालोचना

पाश्चात्य मतानुयायियों की यह मान्यता भी भ्रान्तिपूर्ण है। वेद में दासों के साथ युद्धों का वर्णन तो आता है, पर वे मानवीय युद्ध नहीं, प्रत्युत प्राकृतिक युद्ध हैं। जैसे—इन्द्र और

वृत्र का युद्ध। वेद में इन्द्र को आर्य कहा गया है।[1] और वृत्र (मेघ) को दास तथा दस्यु कहा गया है।[2] इन्द्र विद्युत् है वृत्र मेघ है। इन दोनों का परस्पर संघर्ष ही प्राकृतिक युद्ध है। इसमें ऋक् १।३२।११ **अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार** अर्थात् जलों का भरा हुआ स्थान, वृत्र द्वारा ढका हुआ था। इन्द्र ने वृत्र का वध किया और उस **ढके हुये** स्थान से जलों को बाहर निकाल दिया।

विक्रम संवत् ३१०० (इकत्तीस सौ) वर्ष से पूर्व के वेद-व्याख्याता, निरुक्तकार यास्काचार्य ने इसी मन्त्र के पहले अपने ग्रन्थ में लिखा है कि—वृत्र कौन है—

तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति।

वृत्र कौन है? यह मेघ है, ऐसा निरुक्तकारों का पक्ष है। त्वष्टा का पुत्र असुर है, यह ऐतिहासिक पक्ष है (वह इतिहास भी आधिदैविक है मानवीय नहीं) आपों और ज्योतियों के संघर्ष से वर्षा की क्रिया होती है। ऐसे प्रकरणों में उपमा से मन्त्रों में युद्धों का वर्णन है। इसी निरुक्त की व्याख्या में विक्रम संवत् ५५० (पांच सौ पचास) वर्ष से पूर्व के निरुक्त-

---

१. ऋग् ५।३४।६ **इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथा वशं नयति दासमार्यः।** इस मन्त्र में इन्द्र को आर्य कहा गया है।

२. दास शब्द मेघ के विशेषण में आया है, यह ऊपर दर्शाये १।३२।११ मन्त्र के **'दासपत्नीः'** शब्द से सिद्ध है। यास्काचार्य ने भी यहां दास का अर्थ क्षयकारी मेघ किया है। इसलिये आर्य और दास आदिवासी और आर्य नहीं, प्रत्युत मेघ और विद्युत् हैं।

टीकाकार दुर्ग ने इस युद्ध संबन्ध में इस प्रकार व्याख्या की है—

यदि मेघो वृत्रो यः एषु मन्त्रेषु, इह मन्त्रे वृत्र इत्येतच्छ्रुतम्। तदेतन्निगमानुप्रसक्तं विचार्यत इत्युपयुक्तस्तच्छब्दः। आह को वृत्रः? उच्यते। 'मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः'। निरुक्तमधीयते विदुश्च ये ते नैरुक्ताः। आह यदि मेघो वृत्रो य एषु मन्त्रेषु संग्रामः श्रूयते तत्र कः समाधिरिति। उच्यते, अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति अपां च मेघोदरान्तर्गतानां ज्योतिषश्च वैद्युतस्योद्भूतवृत्तेर्मिश्रीभावकर्म जायते। तेन हि वैद्युतेन ज्योतिषा वाय्वावेष्टितेनेन्द्राख्येनोपताप्यमाना आपः प्रस्यन्दन्ते वर्षभावाय प्रकल्पन्ते। तत्रैवं सत्युदकतेजसोरितरेतरं प्रतिद्वन्द्वभूतयोरुपमार्थेन रूपककल्पनया युद्धवर्णा भवन्तीति। युद्धरूपकाणीत्यर्थः।

निरुक्त टीका २।१६॥

यास्काचार्य की इस इन्द्र वृत्र युद्ध प्रकरण में वर्णित व्याख्या तथा दुर्ग विरचित टीका का सार यह है कि उस वायु आवेष्टित विद्युत् ज्योति जिसे इन्द्र का नाम दिया गया है, उसके तेज से प्रतप्त जल वर्षा के लिए बहते हैं। यहां पर जल और तेज का जो परस्पर प्रतिद्वन्द्व भाव है, यही उपमारूप से युद्ध का वर्णन है।

टिप्पणी—इन्द्र ही विद्युत् है इसके लिये देखो—

अथ यदुच्चैर्घोषस्तनयन् ब ब बा कुर्वन्निव दहति यस्माद् भूतानि बिजन्ते तदस्य (अग्नेः) ऐन्द्रं रूपम्। ऐ० ब्रा० ३।४॥

अर्थ—यह जो उच्चघोष ध्वनि से गर्जना ब—ब—बा शब्द

करते हुए जलाता है जिससे प्राणी डर जाते हैं, वह उस अन्तरिक्ष की अग्नि का ऐन्द्र रूप है।

२. शतपथ ब्राह्मण ११।६।३।९ में लिखा है—**"स्तनयित्नुरेवेन्द्रः"** अर्थात् स्तनयित्नुः यह इन्द्र का ही नाम है।

३. शतपथ ब्राह्मण ६।१।३।१४ में लिखा है कि **विद्युद् वा अशनिः** अर्थात् विद्युत् व अशनि पर्याय है।

४. कौषीतकि ब्राह्मण ६।९ में लिखा है—**"यदशनिः इन्द्रस्तेम"** अर्थात् अशनि और इन्द्र पर्यायवाचक हैं।

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों तथा निरुक्त द्वारा यह स्पष्ट है, कि यहां कोई आदिवासी और आर्यों के युद्ध का वर्णन नहीं प्रत्युत आकाश में इन्द्र और वृत्र का प्राकृतिक युद्ध है।

वेद व्याख्याकार यास्काचार्य ने जो इन्द्र वृत्र युद्ध को प्राकृतिक माना है मानवीय नहीं, उसका आधार यह ऋक् १।३२ का सूक्त है—

इन्द्र वृत्र-युद्ध का एक आलंकारिक सूक्त

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ॥१॥

वज्रधारी इन्द्र ने जो प्रथम बल के काम किये हैं उनका मैं वर्णन करता हूं। प्रथम उसने अहि नामक मेघ का हनन किया। दूसरा वृष्टि का प्रबन्ध किया। तीसरा काम उसने प्रवहणशील पर्वतीय नदियों का मार्ग बनाया।

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्राइव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥२॥

पर्वत में आश्रय लेने वाले अहि नामक मेघ का इन्द्र ने

बध किया, त्वष्टा ने इन्द्र के लिये शब्दकारी और उपताप-कारी वज्र का निर्माण किया। जिस प्रकार अभिनव प्रसूत गौएं अपने बछड़ों के प्रति जाती हैं; उसी प्रकार मेघ-वध के अनन्तर धारावाही जल वेग से समुद्र की ओर गये।

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥३॥

वर्षा करने वाले इन्द्र ने सोम का वरण किया और त्रिकद्रु यज्ञों में चुवाये हुये सोम का पान किया। धनवान् इन्द्र ने मेघों के मुखिया मेघ को अन्तकारी वज्र से मारा।

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥४॥

हे इन्द्र जिस समय तूने मेघों के मुखिया को मारा था उस समय तूने मायावियों की माया का भी विनाश किया। तदनन्तर सूर्य, उषा और प्रकाश को उत्पन्न किया। अन्त को तुम्हें कोई शत्रु न मिला, अर्थात् सब शत्रु समाप्त हो गये।

अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥५॥

इन्द्र ने महान् अन्धकारी वृत्र को छिन्न बाहु कर के बड़े विध्वंसकारी वज्र से मारा। कुठार से काटे हुये वृक्ष-स्कन्ध की भांति वह वृत्र (मेघ) पृथ्वी पर गिरा।

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥६॥

दुर्मद वृत्र ने अपने आप को शत्रुहीन समझ कर महावीर, बहु विध्वंसक शत्रुओं के अपार्जक इन्द्र को युद्ध में ललकारा। इन्द्र के बधकारी कार्य से वह वृत्र बच नहीं सका। इन्द्रशत्रु वृत्र, नदियों में गिर कर नदियों को भी पीसने लगा अर्थात् वृत्र के वध पर इतने वेग से वृष्टि हुई कि नदी वेग के कारण पत्थर भी फूटने लगे।

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥७॥

पाद रहित और हस्त रहित वृत्र ने युद्ध के लिये इन्द्र को आहूत किया। इन्द्र ने इस वृत्र के उन्नत स्थान पर वज्र से आघात किया। जिस प्रकार नपुंसक मनुष्य वीर्यवान् मनुष्य की समानता करने का व्यर्थ यत्न करता है; उसी प्रकार वृत्र ने भी व्यर्थ यत्न किया। इन्द्र द्वारा अनेक स्थानों पर ताड़ित हुआ वृत्र क्षत होकर भूमि पर गिरा।

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥८

जिस प्रकार टूटे हुये तटों में जल बहता है उसी प्रकार भूमि पर गिरे वृत्र का अतिक्रमण करके प्रजा को हर्षाने वाले जल बहते हैं। जो वृत्र जीवित अवस्था में अपनी महिमा से

जलों को रोके हुये का अब वही वृत्र मेघ उन जलों के पावों के तले बह रहा है।

नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीत् दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥९

वृत्र की रक्षा के लिये वृत्र की माता दनु उस पर लेटी, जिससे वृत्र बच जाए। इन्द्र ने नीचे से वृत्र पर प्रहार किया उस समय माता ऊपर और पुत्र दानु नीचे था तदनन्तर जिस प्रकार गौ अपने बछड़े के साथ सोती है। उसी प्रकार वृत्र की माता दनु भी सदा के लिये सो गई।

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः १०

न ठहरते हुये और न बैटते हुये जलों के मध्य में गुप्त और नाम रहित वृत्र के शरीर को जल पहचानते हैं तब इन्द्र का शत्रु वृत्र दीर्घ तमः अर्थात् दीर्घ निद्रा में सदा के लिए सो गया।

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥११

दासपत्नीः अर्थात् दास (वृत्र) जिनका पति हैं (अहिः-गोपाः) अन्तरिक्ष में गति करने वाला अहिः (मेघ) जिनका रक्षक है ऐसे जल पणिः[1] द्वारा जैसे गौवें[2] निरुद्ध थीं उसी

१. पणिः—मेघ जो रश्मियों को आवृत करता अर्थात् छिपाता है।
२. गौः—रश्मियां। निघ० १।५॥

प्रकार जलों के छिद्र निरुद्ध थे इन्द्र ने उस वृत्र का वध किया और आवृत छिद्रों को खोला ।

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् १२

हे इन्द्र ! देव वृत्र ने तेरे वज्र पर प्रहार किया था, तूने घोड़े की पूंछ, जैसे मक्खियों का निवारण करती है उसी प्रकार अनायास से ही उस प्रहार को विफल कर दिया, तूने गौओं को जीता । तूने सोम को जीता और तूने सात नदियों को प्रवाहित किया ।

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३

इन्द्र और अहि (वृत्र मेघ) जब युद्ध हो रहा था तब विद्युत् गर्जन ह्लादुनि अर्थात् हन्-हन् मारो-मारो, यह शब्द भी इन्द्र को परास्त नहीं कर सके। न हि वृत्र की अन्य मायायें भी पराजित कर सकीं। अन्त में मघवा अर्थात् धनवान् इन्द्र ही विजयी हुआ ।

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि १४

हे इन्द्र ! वृत्र हनन के समय जब तुम्हारे हृदय में भय उत्पन्न हुआ था तो क्या तूने अहि (वृत्र) के घातक किसी अन्य को देखा था । श्येन पक्षी की भांति तूने निनानवें नदियों के जल को प्रवाहित किया था। हे इन्द्र तुझे भय न हो यही हमारी प्रार्थना है ।

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव॥१९

इन्द्र जंगम और स्थावरों का राजा है। वह वज्रबाहु इन्द्र शांत और शृंगधारी पशुओं का भी राजा है। वह मनुष्य का भी राजा होकर निवास कर रहा है। जिस प्रकार चक्रनेमि आरों को धारण करती है इसी प्रकार इन्द्र ने भी सब को धारण किया हुआ है।

वैदिक मैथोलोजी के लेखक मैकडानल को मानना ही पड़ा कि वेद में वर्णित इन्द्र वृत्र का युद्ध मानवीय युद्ध नहीं है, अपितु वह प्राकृतिक घटनाओं का वर्णन है। इन्द्र प्रकरण[1] में वह लिखता है—

इन्द्र वर्तमान काल में वृत्र का वध करते हैं या वैसा करने के लिए उनका आह्वान किया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि उनका युद्ध अनवरत रूप से नवीन होता चला जाता है। यह प्राकृतिक दृश्य के सतत नवीभाव का ही गाथात्मक प्रतिरूप है। वृत्र का वध करके उन्होंने अनेक उषाओं और शरदों तक प्रवाहित होने के लिये सरिताओं को उन्मुक्त कर दिया है। अथवा भविष्य में ऐसा करने के लिये उनसे प्रार्थना की गई है। वे पर्वतों को विदीर्ण कर देते हैं और इस प्रकार सरिताओं को प्रवाहित करते हैं।

१. हिन्दी अनुवाद (देव शास्त्र) पृष्ठ १४१।

आदिवासियों की बस्तियों का विध्वंसन

पाश्चात्य मत

(क) दासों के 'पुर' थे। दासों की सम्पत्ति अवश्य अधिक थी, किन्तु उन्हें आक्रामकों के समकक्ष सभ्यता वाला नहीं कहा जा सकता। दासों को पर्वतों में शरण लेने वाला कहा गया है। प्रमुख दास थे—इलिबश, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन्, शम्बर। दस्युओं के नाम इन्होंने लिखे हैं—शुष्ण, चुमुरि तथा शम्बर। (देखो दास शब्द)

(ख) 'शारदी पुरों' के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे दासों के पुर थे। इससे ज्ञात होता है कि शरद् काल में उन्हें आर्यों के विरुद्ध दास लोग ले लेते थे। अथवा नदियों की बाढ़ से बचने के लिए इनकी शरण ली जाती थी। (देखो 'पुर' शब्द)।

ये ऊपर के वाक्य हमने मैक्डोनल और कीथ रचित वैदिक इण्डैक्स से उद्धृत किये हैं। इन्होंने लिखा है कि इलिबिश, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन् तथा शम्बर ये प्रमुख दास थे। इन्होंने इन्हें मनुष्य माना है और भारतीय आदिवासी सिद्ध किया है। जब आर्य लोग युद्ध करते थे तो इन आदिवासियों के पुरों (बस्तियों) का विध्वंसन करते थे।

अब इस निराधार कल्पना की समीक्षा की जाती है—

यह ठीक है कि वेदों में दासों के पुरों को विध्वंस करने का वर्णन आता है। इन्द्र द्वारा किस-किस दास के कितने-कितने पुर तोड़े जाते थे, इसका वर्णन वेद-मन्त्रों द्वारा ही किया जाता है—

त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः । ऋक् १।५१।५ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! हे नृमण अर्थात् मनुष्यों पर अनुग्रह मन वाले तूने पिप्रु नामक असुर के 'पुर' अर्थात् निवास स्थानों को नष्ट किया है।

त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरः । ऋक् १।५३।८ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! तूने वङ्गृद नामक असुर के सैकड़ों पुरों (नगरों) को ध्वंस किया है।

सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः ।

ऋक् ६।२०।१० ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! तुमने वज्रद्वारा शरद् ऋतु में बने हुए दास के सात पुरों को तोड़ा।

शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः । ऋक् १।५१।११ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! तूने शुष्ण नामक असुर के प्रवृद्ध नगरों को तोड़ा।

पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः । ऋक् १।१०३।३ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! दास सम्बन्धी पुरों को तोड़ते हुए विचरण करते हो।

त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव । ऋक् १।५४।६ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! तूने शम्बर की ९९ बस्तियों को तोड़ा ।

नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ।

ऋक् २।१९।६ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! तूने शम्बर के ९९ पुरों को तोड़ कर ध्वंस किया ।

अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।

ऋक् ४।२६।३ ॥

अर्थ—मैंने प्रहृष्ट मन वाले ने, शम्बर की ९९ बस्तियों को एक ही समय में विध्वंस किया ।

त्वं च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः ।

ऋक् ७।१९।५ ॥

अर्थ—हे वज्रधारी इन्द्र ! तेरे बल इस प्रकार के हैं कि तूने तत्काल ही शम्बर के ९९ पुरों का ध्वंस किया था ।

हत्वी दस्यून्पुर आयसीर्नि तारीत् । ऋक् २।२०।८ ॥

अर्थ—दस्यु को मार कर इन्द्र ने उनके लोहे के पुरों को नष्ट किया ।

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।
साकमेकेन कर्मणा ॥ ऋक् ३।१२।६ ॥

अर्थ—इन्द्र और अग्नि इन दोनों ने मेघों को पालन करने वाली ९० पुरियों को एक ही झटके से हिला दिया ।

प्र ते वोचाम वीर्या३या मन्दसान आरुजः ।
पुरो दासीरभीत्य ॥ ऋक् ४।३२।१० ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! तुझ मोदमान अर्थात् प्रहृष्ट ने दासों की बस्तियों को अभिमुख जाकर तोड़ा। हम तेरे बलों को विशेष कर के कहते हैं।

अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः।

ऋक् २।१४।६ ॥

अर्थ—हे अध्वर्यु लोगों ! जिस इन्द्र ने पत्थर तुल्य वज्र से शम्बर नामक असुर के सौ पुरों को तोड़ा।

समीक्षा

पाश्चात्य मान्यता के विद्वानों ने शम्बर, शुष्ण, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन्, इल्विश नाम के दासों तथा दस्युओं को प्रमुख आदिवासी मानकर उन्हें मानवीय रूप का व्यक्ति माना है। जब की यह धारणा निराधार और कपोल कल्पित है। इन्द्र विद्युत् है और वायु द्वारा आवेष्टित विद्युत्तरंगें मेघों को टकराती हैं यही इन्द्र और मेघों का संघर्ष है। शम्बर, शुष्ण आदि सब मेघों के नाम हैं और उनकी जो घटाएं उठती हैं वे दुर्गों और पुरों का रूप धारण कर लेती हैं। ये ही शम्बर, चुमुरि, आदि मेघों की बस्तियां हैं। इन्हें विद्युत् तरङ्ग आवेष्टित वायु तोड़ती है, यही उनकी बस्तियों का विध्वंसन है। वैदिक माइथोलोजी (वैदिक देवशास्त्र पृष्ठ १४४) में इन्द्र के प्रकरण में मैक्डोनल ने स्वयं लिखा है—

विद्युत्-तूफान की गाथात्मक कल्पना में मेघ भी बहुधा वायु में स्थित दानवों के पुर बन जाते हैं। उनकी संख्या ९० ९९ या १०० बतलाई गई है। ये पुर गतिमान, शारद, धातु के

बने हुए अथवा पाषाण के हैं। इन्द्र इन्हें भेद डालते हैं। इसी लिये पुरभिद् विशेषण इन्द्र के लिये प्रयुक्त हुआ है।

इस पुस्तक में मैक्डोनल मानता है—विद्युत् और वायु से दानवों के पुर बन जाते हैं, परन्तु अपनी दूसरी रचना वैदिक इण्डैक्स (हिन्दी अनुवाद वैदिक कोश) में अपने ही विरुद्ध लिखते हैं—"**ये आदिवासी शरद् ऋतु में युद्धों के समय इन पुरों में आश्रय लेते थे। अथवा नदियों के चढ़ाव के कारण ये उन पुरों में निवास करते थे।**" इसी से सिद्ध है कि आदिवासी पुरों के सम्बन्ध में यह स्वयं ही भ्रम में पड़े हुए हैं।

जब शम्बर आदि सब मेघ ही हैं, तो उनके पुरों में शरद् ऋतु में आश्रय लेने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। 'शारदी पुर' का अर्थ है—शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाली मेघ-घटाएं। वेद-मन्त्र में एक स्थान पर 'आयसी पुरः' लिखा है, एक स्थान पर 'पाषण पुर' लिखा है—इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन मेघ घटाओं में पत्थर और लोहे की बनी हुई बस्तियां थी। इसका आलंकारिक अर्थ यह है कि पत्थर और लोहे के तुल्य दृढ़ घटाएं जिन्हें छिन्न-भिन्न करने के लिए इन्द्र को अधिक समय लगता है।

वेद मन्त्रों में भिन्न-भिन्न मेघों के भिन्न-भिन्न पुर अर्थात् घटाओं का वर्णन आता है। किसी के १००, किसी के ६६, किसी के ६० लिखे हैं। वेद में भिन्न-भिन्न प्रकार के मेघों की जो भिन्न-भिन्न संख्या लिखी है, इसमें गूढ़ रहस्य है। यह मेघ-विद्या के ज्ञाता ही अनुसंधान द्वारा सिद्ध कर सकते हैं कि किन-किन मेघों से कितनी घटायें बनती हैं।

आर्यों का आर्यों के साथ युद्ध

और

उसकी समीक्षा

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने वेद मन्त्रों द्वारा यह भी सिद्ध करने का यत्न किया है कि वैदिक काल में आर्यों का आर्यों के साथ भी परस्पर युद्ध हुआ करते थे। (देखो वैदिक इण्डैक्स में आर्य शब्द)।

उन्हें यह भ्रान्ति ऋक् ६।२२।१०; ६।३३।३; ६।६०।६; ७।८३।१; १०।३८।३; १०।६९।६; १०।८३।१; १०।१०२।३ मन्त्रों को देखकर हुई है।

हमने आरम्भ में ही जहां आर्य पद की व्युत्पत्ति की है उसमें सिद्ध किया है कि आर्य पद दो प्रकार से बना है। एक **अर्य** से **अण्** प्रत्यय लगकर तद्धित में आर्य बना है और दूसरा रूप **ऋ** धातु से '**ण्यत्**' प्रत्यय होकर कृदन्त का रूप बना है।

ऊपर उद्धृत मन्त्रों में जहां आर्य शब्द शत्रु के विशेषण में आया है, वहां इसका अर्थ होगा—**अभिगन्तव्यः, अभिगमनीयः** अर्थात् बलवान्, जिस शत्रु पर युद्ध के लिए आक्रमण किया जाए।

इस व्याकरण के नियम को न समझने से इन लेखकों को भ्रान्ति उत्पन्न हुई है।

सायण से पूर्व ऋग्वेद के भाष्यकार उद्गीथ ने भी ऋक्

१०।८३।१ मन्त्र की व्याख्या में आर्य को शत्रु का विशेषण मानकर इस प्रकार व्याख्या की है—

यस्ते॑ म॒न्योऽवि॑धद्वज्र सायक॒ सह॒ ओजः॑ पुष्यति॒ विश्व॑मानु॒षक् ।
सा॒ह्याम॒ दास॒मार्यं॒ त्वया॑ यु॒जा सह॑स्कृतेन॒ सह॑सा॒ सह॑स्वता ।
ऋक् १०।८३।१ ॥

उद्गीथभाष्यम्—'साह्याम अभिभवेम इत्याशास्महे वयं दासम् उपक्षपयितव्यं शत्रूणाम् आर्यम् अरणीयं शूरत्वादिगुणोपेतत्वात् अभिगमनीयं युद्धार्थं च त्वया मन्युना युजा सहायेन ।

सायणाचार्य ने भी इस मन्त्र में आर्य को शत्रु का विशेषण मानकर अर्थ—असमत्तोऽधिकं अर्थात् बलवान् अर्थ ही स्वीकार किया है । मन्त्र का पूरा भाष्य इस प्रकार है—

सायण-भाष्यम्—हे मन्यो क्रोधाभिमानिन् देव ! मन्युर्मन्यतेर्दीप्तिकर्मणः क्रोधकर्मणो वधकर्मणो वेति निरुक्तं (१०।२९), यो यजमानस्ते तुभ्यमाविधत् परिचरति हे वज्र वज्रवत्सारभूत सायक सायकवच्छत्रूणां हिंसक स मनुष्यः सहो बलं बाह्यमोजः शारीरं बलं चानुषगनुषक्तं पुष्यति त्वदनुग्रहात् संग्रामे । यस्मादेवं तस्माद्वयं दासमुपक्षयकर्तारमार्यमस्मत्तोऽधिकं चोभयविधं शत्रुं साह्याम अभिभवेम । केन साधनेनेति, तदुच्यते । त्वया युजा त्वया सहायेन । सहायो विशिष्यते । सहस्कृतेन बलोत्पादितेन सहसा सहमानेन परान् सहस्वता बलवता । ईदृशेन त्वया सहायेनेत्यर्थः ।

समज्र्या पर्वत्या३ वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ ।
शूरइव धृष्णुश्च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः ॥

ऋक् १०।६९।६ ॥

सायण-भाष्यम्—हे अग्ने अज्र्या । अजंति गच्छंतीत्यज्रयो जनाः । तेभ्यो हितानि पर्वत्या पर्वतभवानि वसूनि गवादिलक्षणानि सं जिगेथ । शत्रुभ्यः संजितवानसि । तथार्या बलवद्भिः कृतान् दासा दासैरसुरैः कृतान्वृत्राण्युपद्रवान्सं जिगेथ । तान् हतवानसीत्यर्थः ।

सायणाचार्य ने इस मन्त्र के भाष्य में 'आर्या' (आर्याणि) का अर्थ 'बलवान्' ही किया है ।

अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुतर्यवया वधम् ।

ऋक् १०।१०२।३ ॥

इस मन्त्र की व्याख्या में भी सायणाचार्य ने अर्थ अभिगन्तव्य महान् किया है—

सायण-भाष्यम्—हे इन्द्र जिघांसतो हन्तुमिच्छतोऽभिदासतोऽभिद्रुह्यतः शत्रोर्वज्रमन्तर्यच्छ । अंतर्गमय । तदेवाह हे मघवन्धनवन्निन्द्र दासस्योपक्षीणस्याल्पस्यार्यस्याभिगन्तव्यस्य महतो वा शत्रोर्वधं वज्रनामैतत् । हननसाधनं वज्रं सनुतः । अंतर्हितनामैतत् । अंतर्हितं गूढं प्रयुज्यमानं यवय । पृथक्कुरु ।

इस मन्त्र की व्याख्या में यहां सायण ने शत्रु का विशेषण

होने से आर्य का अर्थ '**अभिगन्तव्य** महत् शत्रु, जिस पर अभिगमन आक्रमण करना चाहिये', ऐसा किया है।

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि॥

ऋक् ६।२२।१० ॥

ऋषि—भरद्वाज बार्हस्पत्य।

अर्थ—हे इन्द्र ! शत्रुओं के नाश के लिए हमें न नष्ट होने वाली महती, निश्चित कल्याणकारी शक्ति प्रदान करो। हे वज्रधारी इन्द्र ! जिस शक्ति से तुम दास अर्थात् उपक्षीण अल्पशक्तिवाले शत्रु तथा आर्य महाशक्ति वाले शत्रु को हिंसित करते हो।

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम॥

ऋक् ६।३३।३ ॥

ऋषि—भरद्वाज बार्हस्पत्य।

अर्थ—हे शूरवीर इन्द्र ! तू (दास) अल्प शत्रु तथा (**आर्य**) महान् शत्रु, इन दोनों प्रकार के शत्रुओं का वध करते हो। हे नरों में अति श्रेष्ठ इन्द्र जिस प्रकार तीक्ष्ण कुठार से वन के वृक्ष काटे जाते हैं, उसी प्रकार तीक्ष्ण आयुधों से संग्रामों में शत्रुओं का विदारण कर।

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती।
हतो विश्वा अप द्विषः॥ ऋक् ६।६०।६ ॥

ऋषि—भरद्वाज बार्हस्पत्य।

अर्थ—हे सद्व्यवहारों के पालक इन्द्र तथा अग्ने ! आप दास अर्थात् अल्पशक्ति वाले शत्रु तथा आर्य महान् शक्ति वाले शत्रु का हनन करते हो। तुम्हीं ने सब द्वेषियों का हनन किया है।

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिंद्रावरुणावसावतम्।
ऋक् ७।८३।१ ॥

ऋषि—वसिष्ठ।

अर्थ—हे इन्द्र और वरुण नेताओं ! आप दोनों के प्राचीन बन्धुभाव को देखकर गौ आदि पशु तथा भूमि की इच्छा करने वाले विस्तीर्ण वक्षस्थल वाले यजमान आपकी शरण जाते हैं। आप दास अर्थात् अल्प शक्ति वाले शत्रु तथा आर्य महान् शक्ति वाले शत्रुओं का विनाश करो। हे नेताओ ! आप सुदास अर्थात् शुभदान करने वाले दानी जन की रक्षा करो।

समज्र्या पर्वत्या३ वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ।
शूरइव धृष्णुश्च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः।
ऋक् १०।६९।६ ॥

ऋषि—सुमित्र वाध्र्यश्व।

अर्थ—हे अग्ने ! तू (दास) उपक्षीण शत्रुओं (आर्य) बलवान् शत्रुओं के पर्वतीय और शीघ्र प्राप्त होने वाले धनों को जीतता है। शूरवीर के समान दुर्धर्ष, तू शत्रु जनों को खदेड़ने वाला है। हे अग्ने ! हमारे विरुद्ध संग्राम की कामना करने वाले शत्रुओं को पराजित कर।

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति ।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम संगमे ।

ऋक् १०।३८।३ ॥

ऋषि—इन्द्र मुष्कवान् ।

अर्थ—हे बहुस्तुत इन्द्र ! जो (दास) अल्पशक्ति वाला शत्रु (आर्य) महाशक्ति वाला शत्रु (अदेवः[1]) मूर्ख शत्रु हमें युद्ध के लिए आह्वान करता है, वे तीनों प्रकार के शत्रु हम से पराजित हों। हे इन्द्र ! तेरी सहायता से इन सब शत्रुओं का संग्राम में हनन करें।

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ।

ऋक् १०।८३।१ ॥

ऋषि—मन्यु तापस ।

अर्थ—हे मन्यो ! हे वज्रतुल्य बाण-शस्त्रधारी क्रोध ! जो तेरी पूजा करता है अर्थात् तुझ मन्यु को विधिवत् धारण करता है, तुम उसके सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक बलों को क्रमशः पुष्ट करते हो। हे मन्यो ! बलदाता तेरी सहायता से हम (दास) उपक्षीण शत्रु तथा (आर्य) बलवान् शत्रु को पराजित करें।

---

१. ये ब्राह्मणाः शुश्रुवाँसोऽनूचानास्ते मनुष्यदेवाः ।

श० ब्रा० ३।२।२।६ ॥

विद्वाँसो हि देवाः । शतपथ ३।७।३।१० ॥

अर्थात्—विद्वान् को देव कहते हैं। अर्थापत्ति से अविद्वान् अर्थात् मूर्ख, अदेव होता है।

अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुतर्यवया वधम् ॥

ऋक् १०।१०२।३ ॥

ऋषि—मुद्गर्ल भार्म्यश्व ।

अर्थ—हे इन्द्र ! जो हमें मारने की इच्छा करता है अथवा जो हम से अभिद्रोह करता है उस पर अपना वज्र फैंक । हे मघवन् (दास) उपक्षीण शत्रु तथा (आर्य) बलवान् शत्रु द्वारा प्रयुक्त जो गूढ़ आयुध है उसे हम से पृथक् कर ।

उत त्या सद्य आर्या सरयोरिन्द्र पारतः ।
अर्णाचित्ररथावधीः । ऋक् ४।३०।१८ ॥

ऋषि—वामदेव गौतम ।

अर्थ—हे इन्द्र ! आकाशस्थ नदी[1] के पार अर्ण और चित्ररथ इन बलवान् मेघ शत्रुओं का तुमने वध किया था ।

टिप्पणी—(१) 'अर्णः' उदक के नामों में पढ़ा है, निघण्टु १।१२।।—ऋधातु से उणादिसूत्र—'उदके नुट् च' (४।१९७) से ऋच्छति गच्छति इति अर्णः जलम् । जल से भरे मेघ को अर्णः कहा गया है ।

(२) 'चित्ररथ' भी एक प्रकार का मेघ ही है । चित्रः आकाशो रथो यस्य सः चित्ररथः । आकाश रूप रथ पर भ्रमण करने वाला मेघ ही चित्ररथ है । चित्र का अर्थ आकाश है तदर्थ देखो पद्मचन्द्र कोष ।

---

१. आकाशस्थ नदी के लिये देखो ऋक् १।१०।८—जेषः स्वर्वतीरपः । नदी के लिये ऋक् २।२२।४।

इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि—जब 'आर्य' शब्द शत्रु के विशेषण में आता है तो इसका अर्थ होगा—**अभिगन्तव्यः अभिगमनीयः** अर्थात् जिसके विरुद्ध आक्रमण करना चाहिए ऐसा बलवान् शत्रु ।

आर्य शब्द के वास्तविक अर्थों को न जानकर ही पाश्चात्य-मान्यता वालों ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि आर्यों का आर्यों के साथ भी परस्पर युद्ध हुआ करता था । उनकी यह कल्पना अज्ञान अथवा पक्षपात से परिपूर्ण है ।

उपसंहार

इस पुस्तक में यह सिद्ध किया गया है कि आर्य और आदिवासियों के युद्ध का वर्णन वेद में नहीं है और यह भी सिद्ध किया गया है कि आर्य, दास और दस्यु जातियां नहीं थीं, प्रत्युत वेद के ये पद गुण वाचक हैं, जाति वाचक नहीं।

आरम्भ में आर्य शब्द दो प्रकार से सिद्ध किया गया है—एक अपत्यार्थ में, जैसे **अर्यस्य अपत्यं आर्यः** और दूसरा **ऋ गति-प्रापणयोः** धातु से ण्यत् प्रत्यय लगाकर सिद्ध किया गया है। इसका अर्थ है—**अरणीयः प्रापणीयः गमनीयः** अर्थात् जिसके पास जाया जाये। परन्तु वेद में ऐसे भी मन्त्र आते हैं जहां आर्य पद शत्रु के विशेषण में आया है, वहां इसका अर्थ होगा बलवान् अथवा महान् अर्थात् अभिगमनीय=जिस शत्रु पर अभिगमन अर्थात् चढ़ाई करनी चाहिये।

दास शब्द वेद में मुख्यत: दो धातुओं से बना है—एक **दसु उपक्षये** और दूसरा **दासृ दाने** से। उपक्षयकारी घातक के लिये दसु धातु का प्रयोग हुआ है और जहां वेद में भृत्य या किंकर अर्थ में दास पद आया है, वहां 'दासृ-दाने' धातु से बना है। वेद में दास शब्द आद्युदात्त और अन्तोदात्त भेद से उपलब्ध होता है। जहां आद्युदात्त है वहां भाव और कर्म में प्रत्यय होता है। इसका अर्थ है—**दस्यते इति दासः**। अर्थात् जिसको मारा जाए, और अन्तोदात्त में **दासयति इति दासः**" जो मारता है अथवा जो हिंसक है वह दास है।

दस्यु पद वेद में **दसु-उपक्षये** धातु से बना है। **"दस्यति नाशयति इति दस्युः"** जो नाश करता है वह दस्यु है ।

वेद में आर्य शब्द मनुष्यों तथा जड़ पदार्थों के लिये भी प्रयुक्त हुआ है । आर्य शब्द इन्द्र, श्रेष्ठ व्यक्ति, ज्योति, व्रत, तथा प्रजा के विशेषणों में आया है ।

इसी प्रकार दास शब्द भी वेद में मनुष्यों तथा जड़ पदार्थों के लिए आया है। दास और दस्यु पद मनुष्यों और शम्बर आदि के विशेषण में भी आये हैं ।

पाश्चात्य मान्यता वालों ने दास और दस्यु पदों से जो भारत के आदिवासियों की कल्पना की है, यह सब भ्रांतियां वेद को आर्यों की दृष्टि में अपमानित करने के लिये लिखी गई हैं ।

इस पुस्तक के पढ़ने से विद्वानों को निश्चय हो जायेगा कि आर्य और दस्यु तथा दासों का युद्ध जो वेद में आता है वह मानवीय नहीं, प्रत्युत इन्द्र वृत्र अथवा विद्युत् और मेघ का अन्तरिक्ष में जो संघर्ष है वह प्राकृतिक युद्ध है। पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने जो मनुष्यों का युद्ध है ऐसा सिद्ध करने की चेष्टा की है वह निराधार कल्पना है ।

आदिवासी

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने शम्बर चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन् तथा इलीबिश शब्दों के आधार से यह लिखा है कि—कि ये लोग आदिवासियों के प्रमुख सरदार थे। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। शम्बर आदि सब मेघों के नाम हैं। इसके लिये ऋक् १।५६।६ देखिये। मन्त्र में स्पष्ट है कि जब इन्द्र अर्थात् विद्युत् तरङ्गों ने शम्बर अर्थात् मेघ पर प्रहार

किया तो शम्बर मेघ से जल की धारायें छूट निकलीं। निरुक्त में भी इन्हें मेघ ही लिखा है। अतः पाश्चात्य मान्यता वालों की उक्त कल्पना भी उनकी अज्ञानता अथवा पक्षपात को सिद्ध करती है।

चपटी नाम वाले आदिवासी

वेद में 'अनास्' शब्द आया है, इसे देखकर पाश्चात्य मान्यता वालों ने अर्थ किया कि जिनकी नासिक नहीं ऐसे चपटी नाक वाले आदिवासी। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। यहां अनास् का अर्थ है 'न शब्द करने वाले' अर्थात् मूक मेघ, जो गरजते नहीं। यह अनास् शब्द दस्यु मेघ के विशेषण में आया है। यहां 'चपटी नाक वाले लिखना' भ्रान्ति नहीं तो और क्या है।

काले वर्ण के आदिवासी

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने भारत के आदिवासियों को कृष्ण वर्ण अर्थात् काले रंग की त्वचा वाले लिखा है। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। उन्होंने जितने मन्त्र अपने पक्ष की पुष्टि में दिये हैं उन मन्त्रों में कृष्ण वर्ण मेघ तथा अन्धकारमयी रात्रि का वर्णन है। मन्त्रों में मनुष्यों का कहीं प्रकरण नहीं है।

आदिवासियों की बस्तियों अर्थात् पुरों का विध्वंसन

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने लिखा है कि आदिवासियों के पुर थे, वे युद्ध के समय उन अपनी बस्तियों का आश्रय लेते थे। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। पुरों के प्रकरण में मनुष्यों का कहीं वर्णन नहीं आता है। यह भी एक प्रकार

के मेघ हैं जिनकी तूफान के समय घटायें उठती हैं, उन घटाओं को ही वेद में मेघों के पुर अर्थात् नगरी लिखा है। इन्द्र अर्थात् विद्युत् वायु आवेष्टित तरङ्गों से उन घटाओं को तोड़ते हैं ये ही इन्द्र का असुरों अर्थात् मेघों की पुरियों का विध्वंसन है। इस प्रकार भारत के आदिवासियों के नगरों को आर्य तोड़ते हैं, ऐसा लिखना उनकी अज्ञानता और पक्षपात को सिद्ध करता है।

आदिवासियों का धर्म

आर्यावर्त में फूट का बीजारोपण करने के लिये पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने लिख दिया कि—द्रविड़ कोल, भील, संथाल आदि मूल—निवासियों का धर्म बाहर से आये हुये आर्यों से पृथक् था। उन्होंने लिखा है कि आदिवासी यज्ञों के विरोधी थे—उनका प्रमुख धर्म लिङ्ग पूजा था। यह भाव उन्होंने वेद में आये हुये **शिश्नदेव** पद से सिद्ध करने का यत्न किया है। उनकी यह धारणा भी मिथ्या एवं कल्पित है। वेद के प्रकरण और ३१ सौ वर्ष **विक्रम** पूर्व में उत्पन्न हुये यास्काचार्य ने 'शिश्नदेव' का अर्थ किया है—**अब्रह्मचर्यः** अर्थात् व्यभिचारी। शिश्नदेव पद से **शिश्नेन ये क्रीडन्ति ते शिश्नदेवाः** अर्थात् जो उपस्थेन्द्रिय से क्रीडा में रत भोगवादी हैं, जो दिन रात शिश्न में ही रत हैं वे व्यभिचारी शिश्नदेव कहलाते हैं।

आदिवासी लिङ्गपूजक थें, ऐसा लिखकर उन्होंने वेद के अर्थों में अनर्थ करने का यत्न किया है।

आर्यों और आदिवासियों का युद्ध

शम्बर, चुमुरि और धुनि आदि शब्दों को वेद में देखकर

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने सिद्ध करने का यत्न किया है कि ये आदिवासियों के प्रमुख नेता थे।

यह भ्रान्ति उन्होंने इसलिये फैलाई कि यह सिद्ध किया जा सके कि आर्य लोग बाहर से आये और यहां के मूल निवासी आदिवासियों से युद्ध करके विजयी हुये। इनकी यह कल्पना भी निराधार है। क्योंकि वेद में शम्बर चुमुरि आदि मनुष्यों के नाम नहीं हैं, ये तो मेघों के नाम हैं और वेद मन्त्रों में प्रकरण भी मेघों का ही है। अन्तरिक्ष में इन्द्र (विद्युत्) और वृत्र (मेघ) का जो प्राकृतिक संघर्ष है यही आधिदैविक युद्ध है। यास्काचार्य ने भी लिखा है कि इन वेद मन्त्रों में **'उपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति'**। इस रूपकालङ्कार को आदिवासी और आर्यों का युद्ध सिद्ध करना अपनी अज्ञानता अथवा पक्षपात सिद्ध करना है।

आर्यों का आर्यों से युद्ध

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने वेद के कुछ मन्त्रों को उद्धृत करके यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि जहां आर्यों का आदिवासियों के साथ युद्ध होता था, वहां आर्य भी आर्यों के साथ लड़ा करते थे। यह भ्रान्ति उन्हें व्याकरण के नियमों के न जानने से हुई है। हमने आरम्भ में आर्य पद की सिद्धि के प्रकरण में लिखा है कि जहां आर्य शब्द शत्रु के विशेषण में आएगा वहां आर्य का अर्थ महान् अथवा बलवान् होगा। इस व्याकरण के नियम के न जानने से उन्होंने अर्थ करने में अपनी अज्ञानता प्रकट की है। वेद में न तो आर्यों का आदिवासियों के साथ युद्धों का वर्णन है और न हि आर्यों का आर्यों के साथ परस्पर युद्ध का वर्णन है। यह सब भ्रान्तियां वैदिक-

चिन्तन को भ्रष्ट करने, वेद में अश्रद्धा उत्पन्न कराने और भारतीय आर्यों को ईसाई बनाने के लिये फैलाई गई हैं। यह हमने भूमिका में मैकाले, मैक्समूलर, मैकडानल, कीथ तथा ग्रिपथ आदि के लेखों से सिद्ध कर दिया है।

अन्तिम निवेदन

मुझे दुःख से लिखना पड़ता है कि अभी तक भी विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में पढ़ाया जा रहा है कि आर्यों ने भारत के आदिवासियों को युद्ध में परास्त करके भारत में आधिपत्य जमाया। जब हमने यह सिद्ध कर दिया कि आर्य, दास और दस्यु जातिवाचक शब्द नहीं और यह भी सिद्धकर दिया कि आर्य से श्रेष्ठ और दास तथा दस्यु से अनार्य अर्थ, ग्रहण किया जाता है, तो फिर आर्यों का आदिवासियों के साथ युद्ध का कोई आधार नहीं रहता। जब तक इन शिक्षणालयों में इस प्रकार की भ्रान्ति-पूर्ण वेद-विरोधी विचारधारा को समाप्त नहीं किया जायेगा, तब तक द्रविड़, कोल, भील आदि भारतीयों के हृदय में आर्यों अर्थात् सवर्ण हिन्दुओं के प्रति घृणा बनी रहेगी। हमारा मुख्य कर्तव्य है कि हर प्रकार से इस वेद-विरोधी विचार-धारा को नष्ट करके भारत का कल्याण करें।

परिशिष्ट-१

निघण्टु के अतिरिक्त ऋग्वेद में आये कुछ असुरों (मेघों) के नाम

वेद में असुर शब्द भी कई स्थलों पर मेघ के लिये प्रयुक्त हुआ है। निघण्टु १।१० में असुर पद मेघ नामों में पढ़ा गया है। वर्ण, आकृति, गति आदि गुण-भेदों के कारण मेघों के भिन्न-भिन्न नाम आये हैं। यथा—

(१) **अत्रिः**—ऋक् ८।१२।१ ।।

(२) **अनर्शनिः**—ऋक् ८।३२।२ ।।

(३) **अर्बुदः**—ऋक् १।५१।६ ।।

यह भी एक प्रकार का मेघ ही है। निरुक्त ३।१० में लिखा हैं कि '**अर्बुदो मेघो भवति अरणम् अम्बुः तद्दोऽम्बुदः ।**'

(४) **अहीशुवः**—ऋक् ८।३२।२ ।।

(५) **इलीविशः**—ऋक् १।३३।१२ ।।

उक्त मन्त्र की व्याख्या में निरुक्त ६।१९ में यास्क ने इलीविश का निर्वचन किया है—'**इलाबिलशयस्य**' इला अर्थात् भूमि के बिलों में सोने वाला। इला पृथिवी नाम निघण्टु १।१ ।। जब मेघ पृथिवी पर बरसता है, तो उसके बिलों=छिद्रों में यह सो जाता है।

(६) **उरणः**—यह भी एक प्रकार का मेघ है । **ऋ गतौ**, उणादि सूत्र ५।१७ से उरण शब्द की सिद्धि होती है । इसका अर्थ होगा शीघ्र दौड़ने वाला मेघ । पद्मचन्द्र कोष तथा शब्दस्तोममहानिधि कोष में यह मेघ अर्थ में आया है ।

(७) **करञ्जः**—यह भी एक प्रकार का मेघ है । ऋक् १।५३।८ मन्त्र में **'पर्णय'** तथा **'वङ्गृद'** मेघों के साथ आने से करञ्ज भी एक प्रकार का मेघ है । यहां भी इन्द्र (विद्युत्) करञ्ज नामक मेघ का वध करता है । 'केन जलेन रञ्जयति इति करञ्जः । वह मेघ जो वृष्टि से प्रजा का रञ्जन कर देता है ।

(७) **कृणारुः**—ऋक् ३।३०।८ **क्वण शब्दे** (भ्वादि) **परिक्वणनं मेघम्** । निरु० ६।१ ।। बहुत गर्जने वाला मेघ ।

(९) **कुयवः**—ऋक् १।१०३।८ ।।

कुत्सितं यवो यवनं मिश्रणं यस्मिन् स कुयवः । यह कुयव शब्द भी वृत्र और शम्बर के साथ पढ़ा गया है ।

(१०) **कौलितरः**—४।३०।१४ ।।

यह शम्बर के विशेषण में आया है ।

(११) **चुमुरिः**—२।१५।९ ।।

चमु अदने धातु से बना है । जो मेघ स्वयं पानी को खा जाता है ।

(१२) **दस्युः**—ऋक् ७।१९।४ ।।

दसु उपक्षये, विनाशकारी मेघ ।

(१३) **दानवः**—ऋक् २।११।१० ।।

दनु मेघमाता, तस्यापत्यं दानवः । जो दनु का अपत्य है उस मेघ को दानव कहते हैं ।

(१४) **दासः**—ऋक् ३।३४।१ ॥

दास '**दसु उपक्षये**' विनाशकारी मेघ ।

(१५) **दृभीकः**—ऋक् २।१४।३ ॥

सर्वान् विदारयति भियं करोति वा । **दृभी भये** चुरादि, दर्भयति से बना है, यह भी एक प्रकार का मेघ है जो अत्यन्त भयानक है ।

(१६) **देवकः**—ऋक् ७।१८।२० ॥

शम्बर मेघ के साथ आने से यह भी एक प्रकार का मेघ है । जो मेघ क्रीड़ा करता हुआ चलता है वह देवक है ।

(१७) **धुनिः**—ऋक् १०।१४९।१ ॥

धुञ् कम्पने—धुनोतीति, जो कांपता है । निरुक्त १०।३२ में लिखा है—**धुनिमन्तरिक्षे मेघम्** ।

(१८) **नववास्त्वः**—ऋक् ६।२०।११ ॥

इसमें वास्तूनां समूहः वास्त्वः, नवः वास्त्वः, यस्य सः । जिसका नया आश्रय समूह है ।

(१९) **नमुचिः**—ऋक् २।१४।५ ॥

न मुञ्चति इति नमुचिः—जो मेघ जल नहीं छोड़ता है ।

(२०) **पर्णयः**—ऋक् १०।४८।८ ॥

पॄ पालनपूरणयोः ।

(२१) **पिप्रुः**—ऋक् २।१४।५ ॥

पॄ पालनपूरणयोः ।

(२२) पणिः—ऋक् ६।२०।४ ॥

पण व्यवहारे स्तुतौ च । (भ्वादि गण) ।

(२३) बृसयः—ऋक् १।९३।४ ॥

(२४) बृहद्रथः—ऋक् १०।४९।६ ॥

(२५) मृगः—ऋक् १।८०।७ ॥

(२६) मृगयः—ऋक् ४।१६।१३ ॥

(२७) रुधिक्राः—ऋक् २।१४।५ ॥

जो रुक-रुक कर चलता है ।

(२८) वर्चिन्—ऋक् २।१४।६ ॥

(२९) व्यंसः—ऋक् १।१०३।३ ॥

(३०) वङ्गृदः—ऋक् १।५३।८ ॥

(३१) शिम्युः—ऋक् १।१००।१८ ॥

(३२) शुष्णः—ऋक् १।५३।२ ॥

(३३) सृविन्दः—ऋक् ८।३२।२ ॥

(३४) स्वश्नः—ऋक् २।१४।५ ॥

आरण्यक ग्रन्थों में मेघों के अन्य भेद—

१. वराहवः २. स्वतपसः ३. विद्युन्महसः ४. धूपयः
५. श्वापयः ६. गृहमेधाः ७. अशनिविद्विषः ।

तैत्तिरीयारण्यक १।९।४-५ ॥

पं० भगवद्दत्त द्वारा लिखित—

The story of Creation as seen by the sages से उद्धृत—

परिशिष्ट–२

निघण्टौ (३०) त्रिंशन्मेघन्नामानि

अद्रिः । ग्रावा। गोत्रः । वलः । अश्नः । पुरुभोजाः । वलिशानः । अश्मा । पर्वतः । गिरिः । व्रजः । चरुः । वराहः । शम्बरः । रौहिणः । रैवतः । फलिगः । उपरः । उपलः । चमसः । अहिः । अभ्रम् । बलाहकः । मेघः । दृतिः । ओदनः । वृषन्धिः । वृत्रः । असुरः । कोशः ।

अ० १, ख० १० ।।

वर्णानुक्रमेण मेघनामान

१. अद्रिः	११. गिरिः
२. अभ्रम्	१२. गोत्रः
३. अश्नः	१३. ग्रावा
४. अश्मा	१४. चमसः
५. असुरः	१५. चरुः
६. अहिः	१६. दृतिः
७. उपरः	१७. पर्वतः
८. उपलः	१८. पुरुभोजाः
९. ओदनः	१९. फलिगः
१०. कोशः	२०. बलाहकः

२१. बलिशानः
२२. मेघः
२३. रैवतः
२४. रौहिणः
२५. वराहः
२६. वलः
२७. वृत्रः
२८. वृषन्धिः
२९. व्रजः
३०. शम्बरः

यास्क-संगृहीत मेघ-नामों की संक्षिप्त व्याख्या[1]

(१) **अद्रिः**—ऋक् १०।८९।६ ॥

अद भक्षणे (अदादि)—वह मेघ जो सूर्यरश्मियों द्वारा भूमि के रसों को चूसता (खाता) है।

(२) **ग्रावाः**—ऋक् १०।१७५।१-४ ॥

गॄ शब्दे (क्र्यादि)—गर्जनादि शब्द करने वाला।

(३) **गोत्रः**—ऋक् १०।१०३।६ ॥

गुङ् अव्यक्ते शब्दे (भ्वादि)—गर्जन के समय अव्यक्त शब्द करने वाला।

(४) **वलः**--ऋक् ३।३०।१० ॥

वृञ् वरणे (स्वादि)—जिससे आकाश वा दिशायें घिर जाती हैं।

(५) **अश्नः**—ऋक् १०।६८।८ ॥

अशूङ् व्याप्तौ (स्वादि)—आकाश में व्यापक होने वाला।

(६) **पुरुभोजाः**—ऋक् ७।७५।८ ॥

---

१. देवराज यज्वा कृत निघण्टु-टीका के आधार पर।

भुज पालनाभ्यवहारयोः (रुधादि)—पुरु बहुत जीवों की वृष्टि द्वारा पालन करता है।

(७) **बलिशानः**—

वल संवरणे (भ्वादि), **ईश ऐश्वर्ये** (अदादि)—दो धातुओं से। आकाश को आच्छदित करता हुआ आकाश का स्वामी होता है।

(८) **अश्मा**—ऋक् १०।१३९।६ ॥

अशूङ् व्याप्तौ (स्वादि) **अश भोजने** (क्रयादि)—आकाश में व्याप्त होने से अथवा सूर्य रश्मियों द्वारा रसों का ग्रहण करने से ।

(९) **पर्वतः**—ऋक् ६।३०।३ ॥

पॄ पालनपूरणयोः—(क्र्यादि)—वृष्टि द्वारा सब का पालन करता है।

(१०) **गिरिः**—ऋक् १।१५४।२ ॥

गॄ शब्दे (क्रयादि)—गर्जन शब्द करने से ।

(११) **व्रजः**—ऋक् १०।४०।८ ॥

व्रज गतौ (भ्वादि)—आकाश में गति करने से ।

(१२) **चरुः**—ऋक् १।७।६ ॥

चर गतिभक्षणयोः (भ्वादि)—जिससे जल निकलने पर गति करते हैं।

(१३) **वराहः**—ऋक् १।६१।७ ॥

वञ् वरणे (स्वादि)—वरमुदकम् आहरति—जल का आहरण करता हैं। अथवा—वर=जल जिसका आहार है।

वराह शूकर के आकार का कभी कृष्ण मेघ हो जाता है इसलिये भी वराह है।

(१४) **शम्बरः**—ऋक् १।५६।६ ॥

शम् पूर्वक वृञ् वरणे (स्वादि)—शं कल्याणं वृणोति आच्छादयति—जल न बरसा कर सुख को नष्ट करने वाला। शम्वर से शम्बर व को ब पृषोदरादि नियम से।

(१५) **रौहिणः**—ऋक् १।१०३।२ ॥

रुह बीजजन्मनि (भ्वादि) रोहः आरोहणम्—अन्तरिक्ष की ओर आरोहण करने से।

(१६) **रैवतः**—

(१७) **फलिगः**—ऋक् ४।५०।५ ॥

फलमस्मिन्नस्तीति फलि उदकम्, तद् गच्छति इति फलिगः—जलों को प्राप्त होने से—जल से भरपूर। फलि भेदनार्थ में भी है—ग्रीष्मताप का भेदन करने वाला होने से फलिग मेघ।

(१८, १९) **उपरः उपलः**—ऋक् १०।२७।२३ ॥

उपरमन्ते अस्मिन् आपः—जल जिसमें रुक जाते हैं।

उप पूर्वक **रमु क्रीडायाम्** (भ्वादि)

(२०) **चसमः**—

चमु अदने (भ्वादि)—सूर्य रश्मियों द्वारा भूमि के रसों को चूसने—खाने के कारण।

(२१) **अहिः**—ऋक् १।३२।४ ॥

अह गतौ (भ्वादि)—अन्तरिक्ष में गति करने से।

(२२) **अभ्रम्**—ऋक् ६।४४।१२ ॥

अभ्र गतौ (भ्वादि)—अन्तरिक्ष में गति करने से ।

(२३) **बलाहकः**—

वारिवाहको वलाहकः (पृषोदरादि नियम से रूप सिद्धि) —जल को वहन करने वाला ।

(२४) **मेघः**—ऋक् १।१८१।८ ॥

मिह् सेचने (भ्वादि) मेहति सिञ्चति भूमिं वर्षाभिः । जो भूमि को वृष्टि से सिञ्चित करता है ।

(२५) **दृतिः**—ऋक् ५।८३।७ ॥

दृ विदारणे (क्र्यादि)—दीर्यते इन्द्रेण । जो इन्द्र=विद्युत् द्वारा फाड़ा जाता है ।

(२६) **ओदनः**—ऋक ८।७७।६ ॥

उन्दी क्लेदने (रुधादि)—उनत्ति क्लेदयति भूमिम् । जो भूमि को गीला कर देता है ।

(२७) **वृषन्धिः**—ऋक् ४।२२।२ ॥

वृष सेचने (भ्वादि)—जो भूमि को सिञ्चित करता है ।

(२८) **वृत्रः**—ऋक् १।६१।१२ ॥

वृणोतेराच्छादनार्थत्वात् । समग्र आकाश को आच्छादित करने से ।

(२९) **असुरः**—ऋक् १०।९२।६ ॥

असु क्षेपणे (दिवादि)—अस्यति क्षिपति जलं भूमौ । भूमि पर जल फैंकने से ।

(३०) **कोशः**—ऋक् ६।८८।६ ॥

कोशतेः शब्दकर्मणः—गर्जन शब्द करने के कारण मेघ का नाम कोश है ।

परिशिष्ट-३

इन्द्र का बैल और भैंसों का भक्षण तथा उसकी समीक्षा

वैदिक माइथोलोजी के रचयिता प्रो० ए० ए० मैक्डानल ने इन्द्र के प्रकरण में लिखा है कि "वे बैल का मांस भी खा जाते हैं। एक बैल का, २० बैलों का, या सौ भैंसों का या अग्नि में भुने हुये ३०० सौ भैंसों को वे खा जाते हैं" अपने इस लेख की पुष्टि में ऋक् १०।२८।३, ऋक् १०।२७।२, ऋक् १०।८६।१४, ऋक् ६।१७।११, ऋक् ५।२९।७ यह पांच मन्त्र उपस्थित किये हैं।

वास्तव में वेद के इन प्रकरणों में जो पूर्व पक्ष ने उद्धृत किये हैं, वहां उसका अर्थ बैल और भैंसा है ही नहीं। यह तो वेद को कलुषित करने के लिये और वेद भक्तों के हृदयों में श्रद्धा को नष्ट करने के लिए तथा आर्यों के हृदयों में गोमांस और महिष मांस का खाना वेदानुकूल है, इस भावना को उत्पन्न करने के लिये यह अर्थ किये गये हैं—

उत्तर पक्ष—पूर्व पक्षी द्वारा उद्धृत १०।२८।३ तथा १०।२७।२ मन्त्रों में जो वृषभ पद है, उसका अर्थ यहां बैल नहीं प्रत्युत सोम है। मन्त्र १०।८६।१४ में उक्षा पद आया है वहां भी उक्षा का अर्थ बैल नहीं प्रत्युत सोम है। अब हम इन तीनों मन्त्रों को उद्धृत करके उनका प्रकरणानुसार सत्यार्थ करते हैं।

प्रथम मन्त्र—ऋक् १०।२८।३ ॥

अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान् पिबसि त्वमेषाम् । पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन् हूयमानः ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! अन्न कामना के लिये जब तेरा आह्वान किया जाता है उस समय शीघ्र ही पत्थरों से कूट कर यजमान तेरे लिये सोम तैयार करते हैं और तू उसका पान करता है, और जब यजमान तेरे लिये (वृषभों) अर्थात् अंशु, सोम डंठलों को पकाते हैं तब तुम उनको भक्षण करते हो ।

दूसरा मन्त्र—ऋक् १०।२७।२ ॥

अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ।

अर्थ—हे इन्द्र ! मैं तेरे लिये (तुम्रं वृषभं) अर्थात् (अंशु) सोम के मोटे डंठल को पकाता हूं और पंचदश सोम के तीव्र रस को निषिञ्चित करता हूं ।

इन मन्त्रों में प्रकरणानुसार वृषभ का अर्थ सोम है । वेद में अन्यत्र भी ऐसे मन्त्र आते हैं, जहां वषभ तथा वृषा सोम के लिये प्रयुक्त हुए हैं ।

टिप्पणी—जहां वृषभ तथा वृषा पद सोम के अर्थो में आये हैं उन मन्त्रों को हम यहां उद्धृत करते हैं—

१. एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवो दुहुः ।
विश्वा वसूनि बिभ्रतम् । ऋक् ९।१०८।११ ॥

२. परा व्यक्तो अरुषो दिवः कविर्वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गा अभि ।

ऋक् ९।७१।७ ॥

३. अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
सं सूर्येण रोचते । ऋक् ९।२।६ ॥

४. तिष्ठत वृषभो गोषु जानन् । ऋक् ९।९६।७ ॥

इन ऊपर के मन्त्रों में वृषा और वृषभ शब्द सोम के लिये प्रयुक्त हुये हैं ।

उक्षा पद सोम अर्थ में

पाश्चात्य लेखक ने ऋक् १०।८६।१४ मन्त्र के आधार से लिखा है कि इन्द्र, उक्षा अर्थात् बैल का भक्षण करता है, उनका यह अर्थ भी भ्रामक है। इस मन्त्र में उक्षा पद का अर्थ बैल नहीं, प्रत्युत सोम है । मन्त्र इस प्रकार है—

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः । ऋक् १०।८६।१४ ॥

अर्थ—मेरे लिये १५ तथा २० उक्षों अर्थात् सोम डंठलों को याज्ञिक पकाते हैं, मैं उन्हें खाता हूं और स्थूल हो जाता हूं । इस प्रकार याज्ञिक लोग मेरी दोनों कुक्षियों को भर देते हैं । इन्द्र सबसे उत्कृष्ट है ।

टिप्पणी—मन्त्र ९।६९।४ में भी उक्षा पद सोम के अर्थ में आया है । देखो—

उक्षा मिमाति प्रतियन्ति धेनवः ।

निरुक्त १२।९ में यास्काचार्य ने ऋक् १०।८६।१३ का एक मन्त्र उद्धृत किया है, जिसमें पाठ आता है—

घसत्त इन्द्र उक्षणः ।

इस पाठ के देखने से पाश्चात्य मान्यता के पक्षपाती यही समझेंगे कि—हे वृषाकपायि ! **ते इन्द्र** अर्थात् तेरा इन्द्र **उक्षणः** अर्थात् बैलों को **(घसत्)** खाये । उनकी इस भ्रान्ति को दूर करने के लिये उक्षणः का अर्थ यास्क मुनि ने स्वयं किया है कि—

एतान्माध्यमिकान्त्संस्त्यायान्, उक्षण उक्षतेर्वृद्धिकर्मणः ।
उक्षन्त्युदकेनेति वा ।।

अर्थात् इन मध्यस्थानीयं सेचन करते वाले अवश्याय (ओस के) कणों को इन्द्र खाता है ।

उक्षण का अर्थ इस मन्त्र में मेघ भी है । अतः सेचन करने वाले मेघों को इन्द्र (विद्युत्) खाता है यह भी अर्थ है ।

ऋग्वेद में वृषभ पद के भिन्न-भिन्न अर्थ

१. **रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।** ऋक् १।९४।१० ।।
इस मन्त्र में वृषभ का अर्थ बैल है ।

२. **त्वमग्ने वृषभः पुष्टि वर्धनः ।** ऋक् १।३१।५ ।।
इस मन्त्र में अग्नि को वृषभ कहा गया है ।

३. **यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् ।** ऋक् २।१२।१२ ।।
यहां आदित्य को वृषभ कहा गया है ।

४. **इन्द्र त्वा वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे ।**
ऋक् ३।४०।१ ।।

इस मन्त्र में इन्द्र को वृषभ कहा गया है ।

सद्यो जातो वृषभो रोरवीति । ऋक् ७।१०१।१ ॥

इस मन्त्र में पर्जन्य को वृषभ कहा गया है ।

महिष (भैंसों) के सम्बन्ध में निर्णय

प्रो० मैक्डानल ने ऋक् ६।१७।११ तथा ऋक् ५।२९।७ इन दो मन्त्रों से सिद्ध करने का यत्न किया है कि इन्द्र ने एक सौ तथा तीन सौ भैंसों का मांस अग्नि में भून कर खाया । देखो वैदिक मैथालोजी इन्द्र प्रकरण ।

प्रो० मैक्डानल का यहां मन्त्रार्थ भ्रम मूलक है । इन दोनों मन्त्रों में महिष का अर्थ भैंसा नहीं, अपितु मेघ है और वह इन्द्र अर्थात् विद्युत् मेघों को खाता है । इन दोनों मन्त्रों के सत्यार्थ पढ़ें—

वर्धान्यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् । पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै । ऋक् ६।१७।११ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! सम्पूर्ण मरुत् गण, समान प्रीतिभाजन होकर स्तोत्र द्वारा तुम्हें वर्धित करते हैं और तुम्हारे निमित्त पूषा तथा विष्णु एक सौ (महिषों) मेघों का पाक करते हैं । तीन पात्रों को पूर्ण करने के लिये मदकारक और वृत्र विनाशक सोम धावित होता है ।

सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि । त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद् वृत्रहत्याय सोमम् । ऋक् ५।२९।७ ॥

अर्थ—इन्द्र के सखा अग्नि ने इन्द्र के लिये तीन सौ (महिषों) मेघों को शीघ्र ही पकाया, इन्द्र ने वृत्र को मारने के लिये यजमान के तीन पात्रों में स्थित सोम रस को एक बार में ही पी लिया।

मन्त्र ६।१७।११ में पूषा और विष्णु एक सौ (महिषों) मेघों को पकाते हैं—यहां पूषा और विष्णु दोनों आदित्य के भेदों के नाम हैं। ये दैवी शक्तियां इस भूमि पर उत्पन्न भैंसों को कैसे भून या पका सकती हैं ? मेघ के अर्थ में तो पूषा और विष्णु अपनी सूर्यरश्मियों द्वारा ताप के कारण, इस भूलोक में वाष्प द्वारा मेघों को बनाते और पकाते हैं। दूसरे मन्त्र में अग्नि अपनी गर्मी से पकाती है यही पूषा, विष्णु और अग्नि का (महिषों) अर्थात् मेघों का पकाना तथा भूनना है और वायु आवेष्टित इन्द्र अर्थात् विद्युत् द्वारा (महिषों) मेघों का भक्षण है।

टिप्पणी—निरुक्त १२।१८ में विष्णु पद का निर्वचन इस प्रकार है—

अथ यद्विषितो भवति तद्विष्णुर्भवति ।

अर्थात् जब-जब आदित्य विविध प्रकार की रश्मियों से व्याप्त होता है तब विष्णु कहाता है।

पूषा का निर्वचन—निरुक्त १२।१६ में लिखा है—**अथ यद्रश्मि-पोषं पुष्यति तदा पूषा भवति ॥**

अर्थात् पूषा सूर्य की उस अवस्था का नाम है जब वह रश्मियों से परिविष्ट हुये रूप को पुष्ट करता है।

मेघ अर्थ में प्रयुक्त महिष पद के लिये वेद के अन्य प्रमाण

यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः ।

ऋक् ८।१२।८ ॥

अर्थ—हे प्रवृद्ध ! हे सत्पते इन्द्र ! सहस्रों (महिषों) मेघों को तूने (अघः) खाया (मारा) ।

सायण ने भी यह अर्थ किया है—

महतो असुरान् वृत्रादीन् यदा (अघः) अवधीः ।

यहां पर महिष का अर्थ मेघ है ।

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ।

ऋक् ८।६९।१५ ॥

अर्थ—अल्प शरीर कुमार की भांति, इन्द्र नवीन रथ पर बैठता है और माता=पृथिवी=पिता=द्यौ के अभ्युदय के लिये बहुकर्मा इन्द्र (मृग) की नाईं इधर-उधर दौड़ते हुये महिष (मेघ) को खाता (मारता) है ।

सायण—महिषं महान्तं मृगं मृगवत् इतस्ततः धावन्तं सर्वैः मृग्यं मेघं पचति ।

मृगस्य घोषं महिषस्य हि ग्मन् । ऋक् १०।१२३।४॥

सायण—मेघस्य शब्दम् ।

एक स्थान पर महिष के साथ वराह पद भी वेद में आया है—

शतं महिषान्क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् ।

ऋक् ८।७७।१० ।।

इस मन्त्र में महिष और वराह दोनों पदों को देखकर वेदानभिज्ञ व्यक्ति को संशय हो जाता है कि १०० भैंसों को और वराह (सूअर) को इन्द्र खाता है। वास्तव में महिष और वराह ये दोनों पद वेद में मेघों के लिये आये हैं।

वराह पद मेघ के लिए प्रयुक्त हुआ है, इसके लिए प्रमाण—

विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता । ऋक् १।६१।७ ।।

इस मन्त्र में वराह मेघ अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

यास्काचार्य ने भी—

वराहः, वराहो मेघो भवति वराहारः ।

वरमाहारमाहार्षीः, इति च ब्राह्मणम् ।

निरुक्त ५।४, निघण्टु १।१० में भी वराह पद मेघ नामों में पढ़ा गया है। इस प्रकार पाश्चात्य मान्यता के लेखकों को वैदिक-साहित्य का ज्ञान न होने से, भ्रम हो गया अथवा जान-बूझ कर अर्थ बिगाड़ा गया है।

महिष पद वेद में किस-किस अर्थ में कहां-कहां प्रयुक्त हुआ है—स्थालीपुलाक न्याय से इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

मृगो न महिषो वनेषु । ऋक् ६।६२।६ ।।

इस पद में महिष भैंसे के लिये प्रयुक्त हुआ है तथा देखो ऋक् ६।६६।६ ।।

महां असि महिष । ऋक् ३।४६।२ ॥

इस मन्त्र में महिष पद इन्द्र के लिये प्रयुक्त हुआ है।

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निम् । ऋक् १०।१४६।६ ॥

इस मन्त्र में महिष अग्नि के विशेषण में आया है।

पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।

ऋक् ९।११३।३ ॥

इस मन्त्र में सोम के लिए महिष पद का प्रयोग है।

अग्नि के महिष पद के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाण—

अग्निर्वै महिषः स हीदं जातो महान्त्सर्वमैक्षत ।

श० ७।३।१२३ ॥

प्राणों के अर्थ में महिष पद का प्रयोग—

प्राणा वै महिषाः । श० ६।७।४।५ ॥

ऋत्विज् अर्थ में—

ऋत्विजो वै महिषाः । श० १२।८।१।२ ॥

यास्क निघण्टु ३।३ में महिष का अर्थ महान् है।

ऋक् १०।१८९।२ मन्त्र का ग्रिफथ ने इंगलिश अनुवाद इस प्रकार किया है—

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥

Expiring when he draws his breath. She moves along the lucid spheros. The bull Shines out through all the sky. Rv. 10-189-2.

११८ क्या वेद में आर्यों और आदि वासियों के युद्धों का वर्णन हैं ?

मैक्डनल और कीथ ने वैदिक इण्डैक्स पुस्तक में ऋग्वेद में आये सब मन्त्रों में महिष पद का "शक्तिशाली वन्य पशु" ही अर्थ किया है अन्य नहीं। परन्तु ग्रिफथ ने १०।१८६।२ मन्त्र में महिष का अर्थ सूर्य किया है जो मैक्डानल के विरुद्ध है।

इसी से समझ सकते हैं कि पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने महिष का केवल वन्यशक्तिशाली पशु अर्थ करके, किस प्रकार पक्षपात से वेद के शब्दों के अर्थों को भ्रष्ट करने का यत्न किया है।

परिशिष्ट-४

इन्द्र का सोमपान

ऋग्वेद में जहां-जहां भी इन्द्र का वर्णन आता है, वहां इसके सोमपान का वर्णन भी आता है। इन्द्र (विद्युत्) अन्तरिक्ष स्थानी है और उसका सोमपान क्या है? इसका वर्णन इस लेख में है।

ऋग्वेद १०।११६।३ में वर्णन आता है कि सोम दो प्रकार का है। एक दिव्य और दूसरा पार्थिव—

ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र ममत्तु यः सूयते पार्थिवेषु।

हे इन्द्र! तुम्हें दिव्य सोम तथा पृथिवी में उत्पन्न होने वाला सोम तृप्त करे। इस मन्त्र से स्पष्ट है कि सोम दो प्रकार का है। एक दिव्य सोम है और दूसरा भूमि में उत्पन्न होने वाली वनस्पति है। वेद में सोम[1] को वनस्पति, वीरुधांपति, तथा ओषधि कहा गया है।

ऋग्वेद १०।३।१, ९।४६।१, ८।६३।२, ९।८२।३ के मन्त्रों में सिद्ध है कि सोम वनस्पति, पर्वतों के उच्च शिखर पर उत्पन्न होती है। सोम के लिए इन मन्त्रों में **पर्वतावृधः, गिरिषु क्षयं दधे, अद्रयः**, ये पाठ सिद्ध करते हैं कि सोम वनस्पति पर्वतों पर होती है। ऋक् ३।५३।१४ में इसे **नैचाशाखम्** अर्थात् नीचे की ओर शाखा वाला लिखा है। सोम के अंशु डंठल कहलाते हैं। ये अंशु जब फूल जाते हैं तब इनमें

---

१. ऋग्वेद में सोमलता पद नहीं है, इसे लता कहना ठीक नहीं।

से स्राव टपकता है। इन डंठलों को पत्थरों से कूटा जाता है और ऊन के कपड़े में छान कर प्रयोग में लाया जाता है। इस रस के ऋक् १।५।५ में **दध्याशिरः**, ऋक् १।१३७।१ में **गवाशिरः**; ऋक् १।१८७।९ में **यवाशिरः** विशेषण आते हैं अर्थात् सोमरस को दही, गोदुग्ध तथा जौ के साथ मिला कर पीने का वर्णन आता है। ऋग्वेद ९।८६।११, १२ में इसे जल के साथ मिलाने का भी वर्णन हैं। यज्ञ में सोमरस की हवि भी दी जाती है। ऋक् ९।८।१ में इसे वीर्यवर्धक, रोगनाशक तथा बलदायक लिखा है।

अन्तरिक्ष में स्थित इन्द्र का इस पार्थिव सोम से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन्द्र का दिव्य सोम से सम्बन्ध है। जिसका वर्णन हम विस्तार से नीचे कर रहे हैं।

वेद के वास्तविक मर्म को न जानने से, कई लेखकों ने यह भ्रान्ति उत्पन्न की है कि अन्तरिक्षस्थ इन्द्र भी इसी सोमरस का पान करता है जो पार्थिव है। इसी भ्रान्ति को दूर करने का यत्न इसमें किया गया है।

इन्द्र का सोमपान

दिव्य सोम को ऋक् ९।३८।५ में **दिवः शिशुः** अर्थात् द्युलोक का पुत्र कहा गया है। ऋक् ९।४१।३ में इसे **चरन्ति विद्युतो दिवि** अर्थात् द्युलोक में सोम चमकते हैं। ऋक् ९।४९।१ में

पवस्व वृष्टिमा सु नोऽपामूर्मिं दिवस्परि।
अयक्ष्मा बृहतीरिषः ॥

इस मन्त्र में सोम मिश्रित वृष्टि जल, रोगनाशक और अन्न प्रदाता लिखा है। सोम सूर्यरश्मियों से प्रकाशमान् है—

भानुना द्युमन्तम् । ऋक् ९।६५।४ ॥

सोम का निवास द्युलोक में है—

दिवि सोमोऽधिश्रितः । १०।८५।१ ॥

इस प्रकार के अनेक मन्त्र वेद में आते हैं, जिनसे सिद्ध है, कि अन्तरिक्ष में स्थित इन्द्र जिस सोम का पान करता है वह पार्थिव सोम नहीं। ऊपर के मन्त्रों से सिद्ध है कि सोम सूर्य से उत्पन्न होता है। इस सोम को पीकर अन्तरिक्ष में स्थित इन्द्र=विद्युत् बलवान् होता है—

एष सूर्येण हासते पवमानो अधि द्यवि ।
पवित्रे मत्सरो मदः । ऋक् ९।२७।५ ॥

इस मन्त्र का तात्पर्य है कि बलकारी सोम सूर्य से जब निकलता है तो **अधि द्यवि** अर्थात् अन्तरिक्ष में प्रवेश करता है और अन्तरिक्ष में स्थित जो मध्यम-स्थानीय अग्नि अर्थात् विद्युत् (इन्द्र) जब सूर्य से छोड़े हुये सोम=ऊर्जा का पान करता है तो उस विद्युत् में इतना बल आ जाता है कि वह भयंकर से भयंकर वृत्रों अर्थात् मेघों को तोड़-फोड़ करके उनमें स्थित जलों को प्रवाहित करके भूलोक पर नदियों को प्रवाहित करता है। सोम को श्येन नामक पक्षी द्युलोक से लाता है, यह वर्णन भी आता है—ऋक् ९।८७।६ में **श्येनभृतः** तथा ऋक् ९।८९।२ में इसे **श्येनजूतः** कहा है। ऋक् ९।८२।९ में एक मन्त्र आता है जिससे यह सिद्ध है कि श्येन सोम को पांव से पकड़ कर अन्तरिक्ष में लाता है—

यं ते श्येनः पदाभरत् तिरो रजांस्यस्पृतम् ।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ।

इन मन्त्रों को देखकर वेद से अनभिज्ञ लेखकों ने यह आख्यायिका गढ़ी कि श्येन नामक पक्षी द्युलोक से अपने पांव में पकड़ कर सोम को लाता है। उन भ्रामक लेखकों ने यही सिद्ध करने का यत्न किया है कि श्येन अपने पांव में सोम के डंठल को पकड़ कर भू-लोक में लाया। **वेद मन्त्रों से सिद्ध है** कि यहां श्येन का अर्थ पक्षी नहीं है, **श्येन आदित्य** अग्नि का नाम है—इसके लिये देखो **वेद मन्त्र—**

नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम् । ऋक् ७।१५।४

(दिवः) द्युलोक में स्थित (श्येनाय अग्नये) क्षिप्रगामी अग्नि के लिये ।

इस मन्त्र में श्येन अग्नि का विशेषण है और श्येन शब्द का अर्थ है शीघ्रगति वाली सूर्य किरण। यास्काचार्य ने निरुक्त ४।२४ में श्येन का निर्वचन किया है—**श्येनः शंसनीयं गच्छति** अर्थात् जिसकी गति प्रशंसनीय है। उणादि सूत्र २।४७ **श्यास्त्याहृञविभ्य इनच्** इस सूत्र से **श्यैङ् गतौ** (भ्वादि गण) धातु से 'श्यायते गच्छति इति श्येनः' अर्थात् जिसकी शीघ्र गति है वह श्येन है।

इस प्रकार वेद के मर्म को न समझ कर यह लिखना कि श्येन पक्षी द्युलोक से सोम को पावों से पकड़ कर लाया, यह भ्रम नहीं तो और क्या है ?

ऋक् ९।११३।३ में लिखा है—

तं सूर्यस्य दुहिताभरत् ।

अर्थात् उस सोम को सूर्य की पुत्री अर्थात् सूर्य किरण अन्तरिक्ष में लाती है। ऋग्वेद ९।६३।२७—

पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत। पृथिव्या अधि सानवि ॥ का तात्पर्य है कि सोम द्युलोक से अन्तरिक्ष लोक में आता है और अन्तरिक्ष में सोम मिश्रित वृष्टि पृथिवी पर बरस कर अनेक प्रकार की वनस्पतियों में शक्ति उत्पन्न करता है।

ऋक् ९।१।६ **पुनाति ते परिस्रुतं सोमं सूर्यस्य दुहिता।**

इस मन्त्र में भी सोम को सूर्य पुत्री पवित्र करती है अर्थात् सूर्याग्नि की विशेष किरणें सोम को बलवती बनाती है। सारांश यह है कि आदित्य से ही एक विशेष प्रकार की किरणें निकलती हैं जिनमें विशेष प्रकार की ऊर्जा (शक्ति) है। वे किरणें अन्तरिक्ष में अब विद्युत् अग्नि से मिलती है तो उस विद्युत में बहुत अधिक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यही इन्द्र अर्थात् विद्युत् का सोमपान है।

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित वा प्रसारित प्रामाणिक ग्रन्थ

१. **ऋग्वेदभाष्य** (संस्कृत हिन्दी वा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका सहित)—प्रतिभाग सहस्राधिक टिप्पणियां, १०-११ परिशिष्ट व सूचियां भाग I— ३५-००, भागII — ३०-००, भाग III—३५-०० ।

२. **यजुर्वेदभाष्य-विवरण**—ऋषि दयानन्दकृत भाष्य पर पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत विवरण I भाग—१००-००, II भाग—४०-००

३. **तैत्तिरीय-संहिता**—मूलमात्र, मन्त्र-सूची सहित । ४०-००

४. **तैत्तिरीय संहिता-पदपाठ**— मूल्य १००-००

५. **अथर्ववेदभाष्य**—श्री पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय कृत । ११-१३वां काण्ड ३०-००; १४-१७ वां काण्ड २४-००; १८-१९वां काण्ड २०-००; बीसवां काण्ड २०-०० ।

६. **ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका**—पं० युधिष्ठिर मीमांसक द्वारा सम्पादित एवं शतशः टिप्पणियों से युक्त । बढ़िया जिल्द ३०-००

७. **माध्यन्दिन (यजुर्वेद) पदपाठ**—शुद्ध संस्करण । २५-००

८. **गोपथ ब्राह्मण (मूल)**—सम्पादक श्री डा० विजयपाल जी विद्यावारिधि । सबसे अधिक शुद्ध और सुन्दर संस्करण । मूल्य ४०-००

९. **कात्यायनीय ऋक्सर्वानुक्रमणी**—षड्गुरुशिष्य विरचित वृत्ति। भूमिका और ७ परिशिष्टों से युक्त । मूल्य १००-००

१०. **ऋग्वेदानुक्रमणी**—वेङ्कट माधवकृत । व्याख्याकार—डा० विजयपाल विद्यावारिधि । उत्तम-संस्करण ३०-००; साधारण २०-००

११. **ऋग्वेद की ऋक्संख्या**—युधिष्ठिर मीमांसक मूल्य २-००

१२. **वेद संज्ञा-मीमांसा**—युधिष्ठिर मीमांसक १-००

१३. **वैदिक छन्दो-मीमांसा**—यु० मी० नया संस्करण २०-००

१४. **वैदिक-स्वर-मीमांसा**—यु० मी० (नया सं०) २५-००

१५. **वैदिक-साहित्य-सौदामिनी**—श्री पं० वागीश्वर जी वेदालंकार ने 'काव्यप्रकाश' आदि के ढंग पर **वैदिक-साहित्य** पर यह महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय विवेचनात्मक ग्रन्थ लिखा है। मूल्य ४०-००

१६. **देवापि और शन्तनु के आख्यान का वास्तविक स्वरूप**—लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। मूल्य २-००

१७. **वेद और निरुक्त**—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। मूल्य २-००

१८. **निरुक्तकार और वेद में इतिहास**—,, ,, मूल्य २-००

१९. **त्वाष्ट्री सरण्यू की वैदिक कथा का वास्तविक स्वरूप**—लेखक—श्री पं० धर्मदेव जी निरुक्ताचार्य। मूल्य २-००

२०. **यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा**—ले०पं० विश्वनाथ जी वेदोपाध्याय। बढ़िया जिल्द २०-००, साधारण १६-००।

२१. **शतपथब्राह्मणस्थ अग्निचयन-समीक्षा**—पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड जी मूल्य ४०-००

२२. **उरु-ज्योति**—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल लिखित वेदविषयक स्वाध्याययोग्य ग्रन्थ। सुन्दर छपाई पक्की जिल्द १६-००

२३. **ANTHOLOGY OF VEDIC HYMNS**—Swami Bhumananda Sarasvati. ५०-००

२४. **बौधायन-श्रौत-सूत्रम्**—(दर्शपूर्णमास प्रकरण)—भवस्वामी तथा सायण कृत भाष्यसहित (संस्कृत)। ४०-००

२५. **दर्शपूर्णमास-पद्धति**–पं० भीमसेन कृत, भाषार्थ सहित २५-००

२६ **कात्यायन-गृह्यसूत्रम्**—(मूलमात्र) मूल्य २०-००

२७. **श्रौतपदार्थ-निर्वचनम्**—(संस्कृत) अग्न्याधान से अग्निष्टोम, पर्यन्त आध्वर्यव पदार्थों का विवरणात्मक ग्रन्थ। सजिल्द ४०-००

२८. **संस्कार-विधि**—शताब्दी संस्करण, ४६० पृष्ठ, सहस्राधिक टिप्पणियां, १२ परिशिष्ट। मूल्य लागतमात्र १५-००, राज-संस्करण २०-००। सस्ता संस्करण मूल्य ५-२५, अच्छा कागज सजिल्द ७-५०

२९ **अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त श्रौत यज्ञों का संक्षिप्त परिचय**—ले० यु०मी० तथा डा० विजयपाल जी। १०-००

३०. **संस्कार-विधि-मण्डनम्**—संस्कार-विधि की व्याख्या। ले०–वैद्य श्री रामगोपाल जी शास्त्री। अजिल्द १०-००; सजिल्द १४-००

३१. **वैदिक-नित्यकर्म-विधि**—सन्ध्यादि पांचों महायज्ञ तथा बृहद् हवन के मन्त्रों की पदार्थ तथा भावार्थ व्याख्या सहित। सजिल्द ५-००

३२. **वैदिक-नित्यकर्म-विधि**—(मूलमात्र) सन्ध्या तथा स्वस्ति-वाचनादि बृहद् हवन के मन्त्रों सहित। मूल्य १-००

३३. **वर्णोच्चारण-शिक्षा**—ऋ० द० कृत हिन्दी व्याख्या ०-६०

३४. **शिक्षासूत्राणि**-आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र शिक्षा-सूत्र। ६-००

३५ **निरुक्त-श्लोकवार्त्तिकम्**— नीलकण्ठ गार्ग्य विरचित। सम्पादक—डा० विजयपाल विद्यावारिधि। मूल्य १००-००

३६. **निरुक्त-समुच्चयः**—आचार्य वररुचि विरचित (संस्कृत)। सं०—युधिष्ठिर मीमांसक। मूल्य १५-००

३७ **अष्टाध्यायी**—(मूल) शुद्ध संस्करण। ३-५०

३८ **अष्टाध्यायी-भाष्य**—(संस्कृत तथा हिन्दी) श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत। भाग I ३०-००, भाग II २५-००, भाग III ३०-००

३९. **धातुपाठ**--धात्वादिसूची सहित, सुन्दर शुद्ध संस्करण ३-००

४० **क्षीरतरङ्गिणी**—क्षीरस्वामी कृत व्याख्या मूल्य ५०-००

४१ **वामनीयं लिङ्गानुशासनम्**—स्वोपज्ञव्याख्यासहितम् ८-००

४२ **संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि**—लेखक—श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु। भाग I—१०-००, भाग II—१०-००।

४३. The Tested Easiest Method Learning and Teaching Sanskrit (First Book)—यह पुस्तक श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु कृत '**विना रटे संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि**' भाग एक का अंग्रेजी अनुवाद है। २५-००

४४. **महाभाष्य**—हिन्दी व्याख्या (द्वितीय अध्याय पर्यन्त) पं० यु० मी०। भाग I ५०-००, भाग II अप्राप्य, भाग III २५-००

४५. **उणादिकोष**—ऋ० द० स० कृत व्याख्या, तथा पं० यु० मी० कृत टिप्पणियों, एवं ११ सूचियों सहित। सजिल्द १४-००

४६. **दैवम् पुरुषकारवार्त्तिकोपेतम्**—लीलाशुक मुनि कृत १०-००

४७. **काशकृत्स्नधातु-व्याख्यानम्**—संस्कृत रूपान्तर। १५-००

४८. **शब्दरूपावली**—विना रटे रूपों का ज्ञान करानेवाली ३-००

४९. **संस्कृत-धातुकोश**—धातुओं का हिन्दी में अर्थ। १०-००

५०. **अष्टाध्यायीशुक्लयजुःप्रातिशाख्ययोर्मतविमर्शः**— डा० विजयपाल विरचित पी० एच० डी० का महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध। ५०-००

५१. **ईश-केन-कठ-उपनिषद्**—वैद्य रामगोपाल शास्त्री कृत हिन्दी अंग्रेजी व्याख्या। मूल्य—ईशो० १-५०; केनो० १-५०; कठो० ३-५०

५२. **तत्त्वमसि**—श्री स्वामी विद्यानन्द जी सरस्वती मूल्य ४०-००

५३. **ध्यानयोग-प्रकाश**—स्वामी लक्ष्मणानन्द कृत। मूल्य १६-००

५४. **आर्याभिविनय (हिन्दी)**—स्वामी दयानन्द। सजिल्द ४ ००

५५ Aryabhivinaya—English translaticn and notes (स्वामी भूमानन्द) दोरङ्गी छपाई। ४-००, सजिल्द ६-००

५६. **विष्णु-सहस्रनाम-स्तोत्रम्**— **(सत्यभाष्य सहितम्)**—सत्यदेव वासिष्ठ कृत वैदिक भाष्य (४ भाग)। **प्रति** भाग १५-००

५७. **शुक्रनीतिसार**—व्याख्याकार श्री स्वा० जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती। विस्तृत विषय-सूची तथा श्लोक-सूची सहित। मूल्य ४५-००

५८ **विदुर-नीति**—युधिष्ठिर मीमांसक कृत प्रतिपद पदार्थ और व्याख्या सहित। बढ़िया कागज, पक्की सुन्दर जिल्द। मूल्य ३६-००

५९. **सत्याग्रह-नीति-काव्य**—आ० स० सत्याग्रह के समय जेल में पं० सत्यदेव वासिष्ठ द्वारा विरचित। हिन्दी व्याख्या सहित। **५-००**

६०. **संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास**—युधिष्ठिर मीमांसक कृत नया परिष्कृत परिवर्धित संस्करण। तीनों भागों का मू० १२५-००

६१. **ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन**—इस बार ऋ० द० के अनेक नये उपलब्ध पत्र और विज्ञापन संगृहीत किये गये हैं। यह संग्रह चार भागों में छपा है। दो भागों में ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन हैं, तथा तीसरे और चौथे भाग में विविध व्यक्तियों द्वारा ऋ० द० को भेजे गये पत्रों का संग्रह है। प्रत्येक भाग—३५-००

६२. **विरजानन्द-प्रकाश**—ले—पं० भीमसेन शास्त्री मूल्य ३-००

६३. **ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्म-चरित्र**—सम्पादक पं० भगवद्दत्त। मूल्य १-००

६४. **ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत-साहित्य को देन**—लेखक—डा० भवानीलाल भारतीय एम०ए०। सजिल्द २०-००

६५. **नाडी-तत्त्वदर्शनम्**—श्री पं० सत्यदेव जी वासिष्ठ। ३०-००

६६. **मीमांसा-शाबर-भाष्य**—हिन्दी व्याख्या सहित। यु०मी० कृत भाग I ४०-०० भाग II ३०-०० भाग III ५०-०० भाग IV ४०-००

६७. **सत्यार्थप्रकाश**—(आर्यसमाज-शताब्दी-संस्करण)—१३परिशिष्ट ३५०० टिप्पणियां तथा सन् १८७५ के प्रथम संस्करण के विशिष्ट उद्धरणों सहित। राजसंस्करण ३५-००, साधारण संस्करण ३०-००

६८. **दयानन्दीय लघुग्रंथ-संग्रह**—१४ ग्रन्थ, सटिप्पण, अनेक परिशिष्टों के सहित। ३०-००

६९. **भागवत-खण्डनम्**—ऋ० द० की प्रथम कृति। ३-००

७०. **ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ और प्रवचन**—इसमें पौराणिक विद्वानों तथा ईसाई मुसलमानों के साथ ऋ० द० के शास्त्रार्थ तथा पूना में सन १८७५ तथा बम्बई में सन् १८८२ में दिये गये व्याख्यानों का संग्रह है। उत्तम कागज, कपड़े की सुन्दर जिल्द। मूल्य ३०-००

७१. **दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह**—संख्या ७७ के ग्रन्थ से पृथक् स्वतन्त्ररूप से छपा है। सं० डा० भवानीलाल भारतीय। सस्ता संस्करण २०-००

७२. **दयानन्द-प्रवचन-संग्रह**—(पूना-बम्बई प्रवचन)। स्वतंत्ररूप से छपा है। अनुवादक और सम्पा० पं० युधिष्ठिर मीमांसक १०-००

७३. **ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास**—लेखक—युधिष्ठिर मीमांसक। नया परिशोधित परिवर्धित संस्करण। ४०-००

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ [सोनीपत-हरयाणा]

रामलाल कपूर एन्ड संस, नई सड़क देहली

श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री कृत ग्रन्थ

वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री ने अपने जीवनकाल में लगभग ३० पुस्तकें लिखीं और प्रकाशित करवाईं, परन्तु अब निम्नलिखित ही उपलब्ध हैं—

१. कठोपनिषद् (हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद) ३-५०
२. केनोपनिषद् (हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद) १-५०
३. ईशोपनिषद् (हिन्दी अंग्रेजी अनुवाद) १-५०
४. संस्कार-विधि-मण्डनम् १०-००
५. Western Theory of Arya-Aborigines wars in the Veda Exploded. 3-00
६. क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन हैं ? १०-००

स्मारक-समिति द्वारा प्रकाशित निम्नलिखित निबन्ध भी उपलब्ध हैं—

७. वेदों की प्रामाणिकता तथा ऋषि दयानन्द—
डा० श्रीनिवास जी शास्त्री १-५०
८. ऋषि दयानन्द के यजुर्वेद-भाष्य में अग्नि देवता का स्वरूप—
डा० कपिलदेव जी शास्त्री २-००
९. वेद-संज्ञा (वेद कितने और कौन से, कैसे)—आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री २-००

प्राप्ति स्थान—

(१) कविराज कृष्णगोपाल एम० ए० वैद्याचार्य;
२३१८, आर्यसमाज रोड़, करोलबाग नई दिल्ली-५
(२) रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, जिला सोनीपत (हरयाणा)
(३) रामलाल कपूर एण्ड संस पेपर मर्चेण्ट, नई सड़क, देहली